चिड़ियाघर

चिड़ियाघर

लेखक
हरिशङ्कर शर्मा

उद्‌घाटनकर्त्ता
समालोचकशिरोमणि साहित्याचार्य
श्री पं० पद्मसिंहजी शर्मा

प्रकाशक
साहित्य-रत्न-भण्डार,
आगरा

प्रकाशक—
महेन्द्र, संचालक—
साहित्य-रत्न-भण्डार,
सिविल-लाइन्स, आगरा।

द्वितीय संस्करण
१५००

दीपावली सं० १९९०
अक्टूबर १९३३.

मूल्य
एक रुपया

मुद्रक—
कपूरचन्द जैन
महावीर प्रेस,
किनारी बाज़ार-आगरा।

'चिड़ियाघर'

की

चख़चख़

कभी कभी मनुष्य के ठाली दिमाग मे कुछ खुजली सी उठा करती है। उस समय उसे प्रायः हँसी-दिल्लगी या विनोदकी वातें बहुत सूझती है। वह मित्र–मण्डली मे जा बैठता है और मनोरंजन करने लगता है। उस समय का विनोद सार्थक हो या निरर्थक, थोड़ी देर के लिए चहल-पहल और मनबहलाव का साधन अवश्य वन जाता है। इस 'चिड़ियाघर' मे ऐसे ही ठाली दिमाग की कुछ कल्पनाएँ एकत्र करदी गई हैं। मालूम नही उनसे पाठको का मनबहलाव होगा कि नही।

पाठक देखेगे कि इस 'चिड़ियाघर' मे कही तो 'काक-कवि' 'काँव-काँव' कर रहे हैं और कही 'कीर कवि' राम-रटना मे निमग्न हैं। कही 'कपोत-कवि' की 'गुटुरगूँ' हो रही है, तो कहीं 'कुक्कुट-राज' की 'कुकड़ूकूँ' सुनाई देती है। कहीं 'कुलङ्ग-कवि' पंख फड़फड़ा रहे है, तो कहीं 'कारण्डव-कवि' चौच चला रहे है। कहीं 'लीडर-लीला' दिखाई देती है, तो कहीं "अल्हड़राम की रें रें" कानो को फोड़े डालती है। कहीं 'पशु-पक्षियो की पार्लमेंट' मे

अधिकार-अन्धड़ उठ रहा है, तो कहीं 'मुछमुण्ड-महामण्डल' में मूछों पर बुरी तरह बीत रही है। कहीं 'विनोदानन्दजी' व्याख्यान झाड़ रहे हैं, तो कहीं कम्बख़्तराय गला फाड़ रहे हैं। कहीं 'काव्य-कण्टक का कोप' है, तो कहीं 'पदवी-पतुरिया' का क्षोभ है। कहीं 'राजनीति-रमणी' मटकती है, तो कहीं 'बिरादरी-भुतनी' भटकती है। कहीं व्याहे बुढ़ऊ की बरात चलती है, तो कहीं बिना व्याही वधू जलती है। निदान इसी प्रकार के "जटिल काफियो" से यह पुस्तक भरी पड़ी है।

पाठक जानते है कि चिड़ियाघर की सैर करते समय कोई जन्तु तो दर्शक की तरफ गुर्राता है, कोई मुँह मटकाता है, कोई दुलत्ती झाड़ता है, कोई दुम हिलाता है, कोई भौं भौं कर पीछे पड़ता है, कोई पंख फड़फड़ा कर ऊपर उड़ता है, कोई चोंच चलाता है, और कोई गर्दन हिलाकर आगे बुलाता है, परन्तु दर्शक अपने मनोविनोद मे निमग्न रहते हैं। उन्हे न किसी के भौंखने का रंज होता है न दुम हिलाने की खुशी। वह तो समझ लेते हैं कि यह मनोरंजन की जगह है। अतएव जन्तुओ की हरकतो पर ध्यान न देकर उन्हे दिल भर कर देखना चाहिए। और हो सके तो किसी से कुछ शिक्षा भी ग्रहण करनी चाहिए। हम समझते हैं, इस चिड़ियाघर के दर्शक भी उसे इसी दृष्टि से देखेंगे और किसी जन्तु की जा अथवा बेजा हरकत से बिल्कुल नाराज़ न होंगे।

'चिड़ियाघर' तैयार हो गया; उसके सारे पिंजड़े भर गये; कोई स्थान ख़ाली न रहा तो ज़रूरत हुई कि उसकी 'ओपनिंग सैरिमनी'

(उद्घाटनोत्सव) कराई जाय। किससे कराई जाय ? यह समस्या सामने आई। बड़े डरते-झिझकते, सकुचाते-लजाते काव्य-कानन-केसरी पूज्यवर श्री पं० पद्मसिंहजी शर्मा से प्रार्थना की गई—साथ ही हृदय में धधकती बनी रही कि कही पूज्य शर्माजी इस 'तूफाने बेतमीज़ी' को दूर ही से न दुरदुरा दे। परन्तु सहृदय साहित्याचार्यजी ने बड़ी उदारता से हमारी विनीत विनती को स्वीकार किया और अगहन सुदि ७, सं० १९८७ वि० को अपने कर-कमलो से 'चिड़ियाघर' का उद्घाटन कर दिया। ऐसे पवित्र हाथो से दरवाज़ा खुलते ही लेखक का हृदय-सरोवर कृतज्ञता के भावो से भर गया और चिड़ियाघर का 'जन्तु-जगत्' आनन्द से चहचहाने लगा।

बस, इस सम्बन्ध मे इतना ही हमे करना था सो कर चुके। अब 'चिड़ियाघर' का दरवाज़ा खुला हुआ है। दर्शक गण आवे और उसे बे रोक-टोक देखें, अगर कही कोई चीज़ पसन्द आ जाय तो उससे अपना मनोरंजन करले।

—हरिशङ्कर शर्मा

द्वितीय संस्करण की भूमिका

पाठको की सेवा मे 'चिड़ियाघर' का यह द्वितीय संस्करण उपस्थित करते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। सहृदय सज्जनो ने 'चिड़ियाघर' को जिस प्रेम से अपनाया वह मेरे लिये बड़े ही गौरव की बात है। साहित्य-महारथियो और पत्र-पत्रिकाओ ने मेरी इस तुच्छ कृति को आदर की दृष्टि से देखा, इससे मेरा उत्साह बहुत कुछ बढ़ गया है। मै अपने इन मान्य महानुभावो के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। 'चिड़ियाघर' के प्रथम संस्करण का मूल्य १।) प्रति पुस्तक था परन्तु अब कुछ पृष्ठ कम करके मूल्य १) कर दिया गया है। इससे ग्राहको को सुविधा रहेगी। प्रथम सस्करण मैसर्स रामप्रसाद एण्ड ब्रदर्स, पुस्तक-विक्रेता और प्रकाशक आगरा ने प्रकाशित किया था, अब इस दूसरे संस्करण को आगरे का सुप्रसिद्ध साहित्य-रत्न-भण्डार, प्रकाशित कर रहा है। आशा है, सहृदय-समाज पहले संस्करण की भाँति इस संस्करण को भी अपना कर उपकृत करेगा।

आगरा
दीपावली, १६६०

हरिशङ्कर शर्मा

चिड़ियाघर

का

उद्घाटन

मधुर हास्य रस के इने गिने दो चार लेखको मे, पण्डित हरिशकर शर्म्मा कविरत्न भी एक है। यानी इनका नाम भी इस प्रसङ्ग मे उल्लेख योग्य है। 'आर्यमित्र' मे इनके 'विनोद-विन्दुओ' का रस-पान करने के लिए अनेक सहृदय पाठक चातक उद्ग्रीव रहते हैं। कई सज्जन तो केवल इसीलिए 'आर्यमित्र' पढते है, और उसमे सिर्फ वही पढ़ते है, बाक़ी उपदेशको का प्रोग्राम, उत्सवो की तिथियाँ, दान-सूची, सस्कारो की सूचना, आर्य-सिद्धान्त की गहन मीमासा इत्यादि सब छोड जाते हैं—

"सन्त हस गुन गहहि पय, परिहरि वारि विकार"

यह उन पाठक-हंसो का हाल है जो आर्यसमाजी नही है, नही तो आर्यसामाजिक पाठक तो स्वाध्याय की तरह, वह सब कुछ पढते हैं, जो 'आर्यमित्र' मे छपता है। मतलब यह है कि हरिशंकर जी के 'विनोद-विन्दुओ' ने 'आर्यमित्र' को साम्प्रदायिकता से वाहर साहित्यिक सीमा मे सम्मिलित कर दिया है। 'विनोद-विन्दु 'आर्यमित्र' की एक विशेषता है। 'आर्यमित्र' के इतिहास में किसी दिन यह वात लिखी जायगी कि एक रूखे-सूखे 'धार्मिक' पर्चे को हरिशकरजी के 'विनोद विन्दुओ' ने कितना सरस वना दिया था,

जिसे पढ़ने के लिए आर्य-समाज से बाहर के लोग भी लालायित रहते थे।

'विनोद-विन्दुओं' की फुआरें मोह-निद्रा मे सोते हुओ की आखे खोल देती है, अँगडाई लेते उठते ही बनता है। पं० हरिशंकरजी 'लीडर-विज्ञान' के विशेष रूप से विशेषज्ञ है, 'लीडर शनास' है, उनके "शुतर गमजे" खूब समझते है। इस विद्या मे तो इन्हे कोई वेताल-पचीसी का सा वेताल सिद्ध हो गया है। बहुत तह की और पते की कहते है। 'लीडर-लीला' देख कर यह बात पाठक आसानी से समझ जायँगे। आजकल लीडर-लीला का दौरात्म्य बहुत भयानक रूप से बढ़ता जा रहा है। अनुयायियो की अपेक्षा लीडरो की संख्या कही बढ़ चली है। पुराने पौराणिक सिद्धान्तो के अनुसार प्रत्येक पदार्थ का एक-एक जुदा अधिष्ठातृ देव होता है, इस सिद्धान्त की सत्यता को आजकल की लीडर-लीला प्रमाणित कर रही है। किसी 'नैशनेल केलैण्डर' में गिजाइयों के छत्ते की तरह ठसाठस लीडरो को भरा देख कर भारत-विद्वेषी किसी विदेशी (अँग्रेज़) ने यह कह कर सन्तोष का सास लिया था कि "जब यहाँ इतने लीडर है तो डरने की कोई बात नही।" लीडर लोग तो अपने काम को खूब समझते हैं, पर अनुयायी (फालोअर) नावाक़िफ है कि उन्हे क्या करना चाहिए, महाकवि 'अकबर' ने चेतावनी दी थी—

"मुरशिदों में से तो हर इक जानता है अपना काम,
हाँ मुरीद अब तक नहीं वाक़िफ़ हुए हम क्या करें!"

आशा है, चिडियाघर में 'लीडर-लीला' पढ़ कर वह भी कुछ-कुछ अपना फर्ज समझ जायँगे। चिड़ियाघर की पोखर में प्रायः वही 'विनोद-विन्दु' इकट्ठे किए गये है, उन्ही से यह पोखर भरी है। चिड़ियाघर का सामान चोखा है, कौतुक की सामग्री है। इस से हास्य-प्रेमी पाठको का मनोरंजन होगा और बहुत कुछ शिक्षा मिलेगी, यदि आँखे खोल कर देखेंगे, समझ कर पढ़ेंगे। 'हुक्के की हिस्ट्री' 'पशु-पक्षियों की पार्लामेण्ट' 'प्रैक्टिकल परमार्थ' 'भारतीय मुछमुण्ड-मण्डल' 'सजीव रोगो के अजीब नुसखे' 'पदवी पतुरिया' '१४४' 'चहचहाता चिडियाघर' एक से बढ़कर एक चित्ताकर्षक है। हरिशंकरजी की भाषा बड़ी चुस्त और चुभती हुई होती है, अनुप्रास तो इनकी भाषा का असाधारण गुण है, सानुप्रास भाषा लिखने मे तो हरिशंकरजी लासानी हैं। अनुप्रास पर तो इन्होंने कुछ जादू सा कर रक्खा है, अपने आप बँधता चला आता है, इन्हे प्रयत्न नहीं करना पडता। चिडियाघर भाषा की दृष्टि से भी और भावों के लिहाज से भी एक सुन्दर वस्तु हो गई है।

"भाषा भणित वस्तु भल वरनी।
कहत सुनत मंगल मुद करनी॥"

आशा है, पाठक इसे चाव से पढ़ेंगे और हरिशंकरजी से अनुरोध करेंगे कि वह एक 'पिंजरापोल' और प्रस्तुत करें, बचे-खुचे विचार जन्तुओं को उसमें भरदें।

यह "चिड़ियाघर" साल भर से तैयार पड़ा है। प्रकाशक महोदय ने मुझसे इसकी भूमिका मांगी थी जो उसी समय भे॰ दी गई थी। परन्तु वह गुम हो गई, कहीं "कागज़ारण्य" में र॰ गई, बहुत ढूंढ़ा, न मिली, फिर न प्रकाशक ने और न लेखक॰ उसकी चर्चा ही चलाई, याद ही न दिलाई। मैं समझा कि पुस्त॰ प्रकाशित होगई होगी, अब जब पिछले दिनो आगरे जाना हुआ तो मालूम हुआ कि 'चिड़ियाघर' वैसे ही बन्द पड़ा है, अभी त॰ दर्शको के लिए उसका दरवाजा नहीं खुला। कारण पूछने प॰ पता चला कि भूमिका के विना यह अनर्थ हो रहा है। सुन क॰ ताज्जुब हुआ, इन भले आदमियो से इतना न हुआ कि एक बा॰ तो मुझे इसकी सूचना दे देते। इस बीच मे न जाने 'चिड़ियाघर को देखने के कितने इच्छुक सदा के लिए चल बसे होगे। पण्डि॰ रामजीलाल शर्मा बिचारे उन्हीं में एक थे, इस 'चिड़ियाघर' क॰ वह अपनी आँखो न देख सके। दुर्भाग्य से कही ऐसी ही दुर्घटना कोई और न हो जाय, इसीलिए अब बिलम्ब करना उचित नहीं लीजिए, मैं अब इस भूमिका की रस्म अदा करके 'चिड़ियाघर को सर्व साधारण के लिए खोलता हूँ—इसका उद्घाटन करत॰ हूँ। जी भर कर सैर कीजिए।

काव्य-कुटीर,
नायकनगला (बिजनौर)
अगहन सुदि ७ सं. १९८७ वि०

पद्मसिंह शर्मा

विषय-सूची

चिड़ियाघर

चहचहाता 'चिड़ियाघर'

स्वप्न के सुखमय संसार मे, विश्व के विचित्र अद्भुतालय की—वाणिज्य-विलास, शिल्प-शाला, धर्म-धाम, समाज-सदन, राजनीति-निकेतन, अकिञ्चन-कुटीर, मजदूर-मञ्जिल आदि-संस्थाऐं देखते देखते, जब जी ऊब उठा, तो अपने राम सीधे साहित्योद्यान की ओर सिधारे, और सोचने लगे कि चलो, इस शुष्कवाद के जलहीन जलाशय से निकल कर सरसता के सुन्दर सरोवर में स्नान करें; झक्कड़ता के झाड़-खण्डो को झाड़ कर सहृदयता के सुखद सुमनो की सुगन्ध सूंघें। अहा ! साहित्योद्यान का सुहावना द्वार देखने ही योग्य था। उसकी सुन्दर सुषमा का विशद वर्णन करने के लिए, कवि-कुल-कैरव-कलाधर कालि-दास की वरद वाणी चाहिये। क्या पूछते हो ? साहित्योद्यान का दिव्य द्वार देख कर अपने राम चित्र लिखे-से रह गए ! आँखें ठगी-सी ठिठक रही !! चित्त चुपके-से चिपक गया !!! पैरो ने आगे बढने से इनकार कर दिया। इतने ही मे उद्यान का अधिकारी आकर बोला—

"देखना है, तो आगे बढ़ो, नहीं तो दरवाजा बन्द होता है।"

मैंने कहा—"फीस ?"

"फीस-वीस कुछ नहीं, केवल सहृदयता का 'सार्टीफिकेट' साथ रखिए। अच्छा, यह तो बताइये, पहले आप इस विशाल बाग़ के किस भाग की सैर करेंगे?"

"मैने यह बाग़ पहले कभी नही देखा, इसलिए समझ मे नही आता कि आपके इस सवाल का क्या जवाब दूँ।"

"अच्छा, बढ़िये आगे, और जो इच्छा हो सो देखिये।"

यह कह कर उस आदरणीय अधिकारी ने मुझे प्रधान द्वार द्वारा अन्दर पहुँचा दिया। अजीब नजारा था, अद्भुत दृश्य दिखाई देता था, गुल्म-लता, तरु-बल्लियो की असीम शोभा का ठिकाना न था! सुहावने वृक्षो और सुन्दर सुमनो की अपूर्व छटा मन को मुग्ध कर रही थी। कोयलो की कूकू और कबूतरो की गुटरगूँ ने 'समाँ' बाँध रक्खा था। जगह जगह जलाशय भरे हुए थे, झरने झर रहे थे, नाले बह रहे थे और सोते हिलोरे मार रहे थे। जिधर निगाह उठती थी, उधर ही आनन्द का आधिपत्य दिखाई देता था।

उद्यान के अन्दर घुसते ही सामने एक चहचहाता 'चिड़िया-घर' दिखाई दिया। मेरे हर्ष का ठिकाना न रहा! खुशी का खजाना मिल गया!! आनन्द की गङ्गा उमड़ पड़ी!! अन्धे को आँखें प्राप्त हो गईं। चलो, पहले इस चहचहाते चिड़ियाघर की ही सैर करें, इसी की वर विचित्रता से अपने अतृप्त नयनो को तृप्त करे। पाटिया (साइन बोर्ड) पर नागरी लिपि मे कितने सुन्दर अक्षर लिखे हुए हैं, कैसा कौशल दिखाया गया है। साथी ने कहा—"अच्छा, आगे बढ़िये। देखिये—इस कमरे में हिन्दी का इतिहास सुरक्षित है; उसमे पुरानी लिपियो और शिला-लेखो का संग्रह किया गया है। ठीक, परन्तु इन सब बातो को सोचने-

समझने के लिये, न अपने राम के पास ओझाजी का हृदय है और न उनका मस्तिष्क ! चलो, और आगे बढ़ो।"

अच्छा ! यह दूसरा कमरा है। इसमे चन्द वरदायी से लेकर भारतेन्दु तक के समस्त साहित्य-सेवियो की स्वर्गीय आत्माएँ, अपनी अपनी कृतियो पर अटल आसन जमाये विराजमान है। "और आगे बढ़ो भाई, यह तो फ़ुरसत मे देखने की चीजे हैं, एक एक का अवलोकन करने के लिये महीनो और वर्षों चाहियें।"

अच्छा, यह कमरा क्या है? ओ हो!—इसमे सम्पादको के पिंजडे रक्खे हैं। वाह ! यह बहार तो देखने ही लायक है। किसी की दुम से दावात बँधी हुई है और कोई कान पर कलम रक्खे कूद रहा है। किसी के पैरों मे पिनो की पैंजनियाँ पड़ी है तो कोई पैंसिल को पंजो मे दबाए डोलता है, किसी की कैंची क़यामत ढा रही है तो कोई पोथियो का पुलन्दा चोच मे दबाए घूमता-फिरता है। कोई पक्षी पिंजड़े मे पड़ा गरूर से गुर्रा रहा है और कोई बेचारा हाथ जोड कर 'हा-हा' खा रहा है। क्या ही विचित्र दृश्य है ! कैसा अजीब तमाशा है !!—अच्छा, इन पिञ्जर-बद्ध-पक्षियो के कमरे के आगे क्या है? संवाददाताओ का सन्दूक़, लेखको का पिटारा, ग्रन्थकारो की गठरी, समालोचकों की टोकरी और व्याख्याताओं का बंडल। अच्छा, इस गद्य-गली को छोडिये, पीछे वापिसी में देखेंगे, पहले पद्य प्रासाद की ओर चलें— उसकी रङ्गत देखें।

ओहो !—यह है पद्य-प्रासाद ! इसमे तो भाँति-भाँति के कवि-कारण्डव और काव्य-कपोत किलोल कर रहे है। दूर-दूर के पद्य-प्रिय पक्षी प्रस्तुत हैं। यहाँ पखेरुओ के पंख-प्रदर्शन से खूब आनन्द आता होगा, बड़ी रौनक़ रहती होगी। अजी जनाब ! रौनक़ की क्या पूछते हो, 'बहिश्त'-सी दिखाई देती है। फिर

आज तो इन कवियो का बहुत बड़ा सम्मेलन होने वाला है, खूब-'चोच-भिड़न्त' होगी। ज़रा देखना तो सही, कैसा मज़ा आता है। हाँ, हज़रत! हमारे लिये तो यह बिलकुल ही एक नई बात होगी। अभी साढ़े तीन बजने मे पन्द्रह मिनट बाक़ी हैं। अच्छी बात है, आइये—इस घास पर बैठ जायँ और तीन-चार घण्टे इस काव्य-कौतुक का आनन्द लूटे।

ठीक साढ़े तीन बजे कवि-सम्मेलन शुरू हुआ। सभापति का आसन गद्यपद्याचार्य गुरुवर गरुड़देव ने ग्रहण किया। आपने अपने भावपूर्ण भाषण के अन्त मे कहा—"महाशयो, सौभाग्य से इस पद्य-प्रासाद मे विविध प्रकार की बोलियाँ बोलने वाले, कृतविद्य कविवर उपस्थित है। सबको समान रूप से चहकने-चटखने और चहचहाने का मौक़ा दिया जायगा। बढ़िया बोलने वालो को, सोने-चाँदी की पैजनियाँ पहनाई जायँगी और कण्ठ में कलाबतून के कण्ठे डाले जायँगे। देखना, गम्भीरता और सभ्यता हाथ से न जाने पावे।"

इतने ही मे कतिपय 'साहित्य-ठूँठों' ने अपनी विद्वत्ता का बखान करते हुए, सभापति के सारगर्भित भाषण पर बड़बड़ाहट शुरू की! कर्ण-कटु काँव-काँव मचाई!—अपनी प्रतिभा की प्रचण्डाग्नि से काव्य-कलिका को झुलसाना चाहा। गुरु गुरुड़जी के गौरव-गुलाल पर गन्दगी के गट्ठर गिराने की चेष्टा की। गुबरीला पद्म पर प्रभुता पाने का प्रयास करने लगा, और स्यार सिंह पर दुलत्ती झाड़ने को समुत्सुक हुआ! परन्तु सब निष्फल! सब व्यर्थ!! उपस्थित कवि-वृन्द ने, सारे 'साहित्य-ठूँठो' का ठाठ बिगाड दिया, बोलती बन्द करदी! जिससे फिर उन्हे अनर्गल आलाप करने का हौसला ही न हुआ।

हाँ, तो सबसे पहले सभापतिजी के आदेशानुसार, प्रार्थना-पन्थी कविकंकजी ने अपनी कविता सुनानी शुरू की, आपके

खड़े होते ही पंखों की फड़ाफड़ और तुण्डो की तड़ातड़ से गगन-मण्डल गूँज उठा। आपने आँखें मीच और गला भींच कर नीचे लिखे पद्यों का पाठ प्रारम्भ किया—

अखिलेश, सर्वेश, प्रजेश पालकम्,
विश्वेश, कुल्लेश, कलेश घालकम्।
मोटर, घड़ी, इञ्जन आदि चालकम्,
विपत्ति, सङ्कट्ट विकट्ट टालकम्॥
× × × × × ×
रघुराज व्रजराज गणेश गौरी।
श्री ..

यहाँ सभापति श्रीगरुड़देवजी ने कवि को रोक कर कहा—"महाशय! आप अपनी कविताऐं सुनाते हैं या 'विष्णुसहस्रनाम' का पाठ करते हैं? काव्य-कानन में किलोल करने आये है या साम्प्रदायिकता की सड़क पर सपाटे भरने चले है?" इस पर कवि कंकजी अप्रसन्न हो गये और क्रुद्ध होकर कहने लगे—"जब तक मेरी 'प्रार्थना-पञ्चशती' समाप्त न हो जायगी तब तक आगे न बढ़ूँगा।" अस्तु, सभापतिजी के आदेशानुसार आपको बैठ जाना पड़ा।

कवि कङ्कजी के प्रस्थान करते ही रसराज-रसिक केकीकविजी की कुलबुलाहट प्रारम्भ हुई। आपकी अदा निराली थी। कभी नाक पर हाथ रखते थे, कभी कर से कमर टटोलते थे। कभी लचकते थे, कभी मचकते थे। कभी फुदकते थे, कभी कुदकते थे। कभी भृकुटी के भाले चलाते थे, कभी कटाक्ष का कारतूस छोड़ते थे। आपने अपने रङ्ग मे अद्भुत आलाप करते हुए कहा—

कामिनी कबूतरी के कलित कलेबर को,
देख-देख पंछियो के पंख झड़ जाते हैं।

श्वेत वक-वृन्द की तो वात ही न पूँछो कुछ,
काले-काले कौए भी पिछाड़ी पड़ जाते हैं ॥
उद्धत उलूक खोजते हैं रात-भर उसे,
गिद्ध 'धृष्टनायक' की भाँति अड़ जाते हैं।
आँख, नाक, चोंच, पङ्ख, पग प्रतियोगिता में,
कवियो के सारे उपमान सड़ जाते हैं ॥

केकी कवि की इस शृङ्गारमयी कविता से सारे कवि-समाज मे हलचल मच गई, चारो ओर से 'अश्लील'! 'अश्लील'!! की आवाज़े आने लगीं। सैकड़ो कबूतरियाँ कवियों को कोसती हुई उड़न्न हो गईं! शोक! "देवियो का ऐसा निरादर! इतना अपमान!! बन्द करो इस कुत्सित कवि-सम्मेलन को, रोको ऐसी गन्दी गढ़न्त को, मत बकने दो इस प्रकार की बेजोड़ बातें"—यही चर्चा सब ओर से सुनाई पड़ रही थी।

बड़ी कठिनाई से प्रेसीडेन्ट मिस्टर गरुड़देव ने शान्ति स्थापित की, और बड़े बल-पूर्वक कहा—"आगे से ऐसी बेहूदी और अश्लील कविताऐं कोई न सुनावे। हाल ही मे इस प्रकार के असद्व्यवहार से श्रीमती कपोत-कान्ताओ को मर्मान्तिक वेदना पहुँची है, जिससे हमे भी बड़ा दुःख है, और होना ही चाहिए। आशा है, आगे ऐसा स्वेच्छाचार न होगा।"

इसके पश्चात् धर्मध्वजी कवि बगुलाभक्तजी उठे, आपके शब्द-शब्द में साम्प्रदायिकता की सनक और कट्टरता की कड़क दिखाई देती थी। सबसे प्रथम आपने डबडबाती हुई आँखों और गिड़गिड़ाती हुई वाणी से धर्मप्राण श्रोताओ से अपील करते हुए नीचे लिखी कविता पढ़ी—

छूत-छात छोड़ना न भूल करके भी भाई,
पतितो, अछूतों को न उठने उठाने दो।

विधवा-विवाह करना है घोर पाप इसे,
कर्मवीर ! कभी कल्पना में भी न आने दो ॥
बिछुड़े हुओं को अपनाना नीचता है निरी,
ऐसी अवनति का न हुल्लड मचाने दो ।
धर्म को बिसार कर जाति को जिलाओ मत,
कल्ह मरती हो उसे आज मर जाने दो ॥

वृद्ध वशिष्ठ बगुलाभक्तजी की कविता से सभा-मण्डप में हर्ष-विषाद का तुमुल-युद्ध छिड़ गया। सुधारक-दल का कोप-कोदण्ड तन गया किन्तु कट्टर पन्थियो ने खुशी के नगाड़े पीटने शुरू किये। सुधार और बिगाड़ के बीच खूब 'कुडुमधूं' हुई। चोचो की चेचे और पंखो की फड़फडाहट ने विश्रान्त वायु-मण्डल विलोडित कर दिया। गरुड़देव फिर उठे और अपने भाषण के आकर्षण से, येन केन प्रकारेण, बड़ी कठिनता पूर्वक शान्ति स्थापित करने मे समर्थ हुए।

थोडी देर बाद सुधारक-दल के कवियों ने फिर राम-रौला मचाया और सभापतिजी से बड़े आग्रह पूर्वक कहा—"अबकी बार सुधारो के आधार और उन्नति के अवतार प्रसिद्ध समाज-संशोधक कविवर काककिशोरजी को कविता पढ़ने का अवसर दिया जाय।" 'अवश्य दिया जाय', 'जरूर दिया जाय', 'फौरन दिया जाय', 'जी खोल कर दिया जाय', 'क्यो न दिया जाय ?' की आवेशपूर्ण ऊँची आवाजो ने गरुडगोविन्दजी को मजबूर कर दिया, और उनकी आज्ञा से कविवर काककिशोरजी ने नीचे लिखी कविता सुनानी शुरू की—

छूत-छात का भूत भगा कर, सब के सँग खालेंगे हम ।
उन्नति की घुड़दौड़ मची है, पीछे नही रहेंगे हम ॥
विधवाओं के व्याह करेंगे, बिछुड़ों को अपनावेंगे ।
जात-पाँत का तन्तु तोड़ कर, एक भाव दरसावेंगे ॥

"बैठ जाइये ! बैठ जाइये !! विश्व विनाशक विषैले वायु से इस विशुद्ध वातावरण को विपाक्त न बनाइये, बैठ जाइये ! इन तरक्की के तरानो को सुनकर कानो के परदे फटे जाते हैं; हिम्मतदारो के हौसले घटे जाते हैं, धर्मप्राणो के पर कटे जाते हैं; बैठ जाइये !" निदान कट्टर कवियो की 'कॉव-कॉव' ने काक-कवि का कचूमर निकाल दिया ! कविता की कमर तोड़ दी !! फसाहत की फरिया फाड़ दी !!! विरोध का बेडौल बवडर देख कर बेचारे काक कवि अपना सा मुँह लेकर अवाक् बैठ गये ।

सभापति श्रीगरुड़देवजी बोले—"महाशयो, मैं पहले ही कह चुका हूँ कि आप लोग कमनीय काव्य-कानन को छोड़ कर सम्प्रदायवाद के बीहड़ वन मे न भटकिये, साहित्य-संलाप त्याग कर मत-पन्थों से न अटकिये । इससे सभा मे अत्यन्त असन्तोष और असीम असद्भाव उत्पन्न होता है । समाज-सुधार का स्थान यह नहीं है; उसके लिए आपको संशोधक संस्थाओ से सहायता प्राप्त करनी होगी । आशा है, आगे जो कविजन अपनी कविताएं सुनावेंगे, उनमे ऐसी वाहियात बाते न आने पावेगी । अस्तु, अब प्रसिद्ध देशभक्त श्रीयुत कीर कविजी अपनी रचना सुनावेंगे, आप लोग ध्यानपूर्वक सुने ।" इसके पश्चात् स्वतन्त्रता-सेवी श्रीयुत् कीर कविजी ने दृग दमका तथा चोच चमका कर नीचे लिखी रागनी रागी—

आज़ाद हो हमारा हिन्दोसतान यारो,
मिल-जुल के देशवासी, ऐसी सुविधि विचारो ।
सब जेल में सड़ो तुम, हक़ के लिए लड़ो तुम,
आपत्ति में पड़ो तुम, पर क़ौम को उबारो ।
खुश होके मार खाओ, भारत के गीत गाओ.
हँस बेड़ियाँ बजाओ, दुखिया के दुःख टारो ।

"वाह सभापतिजी! वाह!! क्या आपने हमे यहाँ प्रीजन के पिंजड़े मे अथवा कारागार के कठहरे मे बन्द करने को बुलाया है? भाड़ मे जाय भारत और आग मे फुँके आज़ादी! अजी जनाब! हम यहाँ क़ौम का उद्धार करने आए हैं या काव्य-कानन में कुदकने-फुदकने? याद रहे, अगर किसी 'सी० आई० डी०' वाले ने सुन लिया तो बची-खुची स्वाधीनता भी नष्ट हो जायगी, लेने के देने पड़ जायँगे! हमे इस बकवाद की जरा भी ज़रूरत नहीं है, अपने राम तो आशियाने मे पंख पसार कर सोते और आनन्द के बीज बोते हैं।"

कीर कवि की इस कड़ी कविता को सुन कर व्योम-विहारी गरुड़देवजी को भी गुस्सा आगया। उन्होने 'लायलटी' पर लम्बा लेक्चर झाड़ते और क्रोध से मुँह फाड़ते हुए कहा—"कविवरो! तुम्हें इस व्यर्थवाद से क्या? हिन्दुस्तान के आज़ाद होने न होने से तुम्हारा प्रयोजन? तुम तो अपने उद्यान मे अब भी स्वाधीन हो, और आगे भी रहोगे। अगर तुम्हारा अभिप्राय खमण्डल में खलबली मचाना है, तो याद रक्खो मै खगराज हूँ, ऐसा कभी न होने दूंगा। क्या तुम मेरा साम्राज्य छीनना चाहते हो? धिक्कार है तुमको, और तुम्हारे विचित्र विचार को!"

सभापति श्रीगरुड़जी के इतना उचारते ही चारो ओर से 'छिमान् महाराज!', 'छिमान् महाराज!!' की आवाज़ आने लगी। कीर कवि ने भी हकीर होकर आप से क्षमा-याचना की।

तदनन्तर सभापतिजी के आदेशानुसार साँग-सनेही कविवर कुलंगजी खड़े हुए। आपने कड़ाके की आवाज़ मे झड़ाके से अपना अद्भुत आलाप आरम्भ किया—

वड़ों की बात बड़ी है, घडे में पड़ी घड़ी है।
है ऊदल कहा विचारो, भयो जो आगे ठारो॥
न देखो रूप हमारो—

और मारदेहु मर जाहि ताहि डर जाहि न हिम्मत हारो—
धिनाधिन ताक् थेई था।

कुलग कवि की करारी कविता सुनते ही सभा मे सन्नाटा छा गया! उपहार मे पैजनियो के पुलन्दे पड़ने लगे, 'वाह-वाह' की धूम मच गयी! 'वसमोर' का शोर होने लगा। एक एक पंक्ति अनेक वार सुनी जाने लगी। सभापतिजी सोचने लगे, कहीं इस घोर वीर-रस की कविता से उत्तेजित होकर कोमल-काय-कवि-कुमार आपस ही मे सिर-फुटौअल न कर डाले। अतएव आपने कुलंग कवि को अधवर ही मे बैठा दिया, जिससे सहृदय काव्य-मर्मज्ञ उनकी क्रान्ति कारिणी कलित कविता सुनने के लिए मुँह वाये रह गए।

इसके वाद 'पर-उपदेश-कुशल कवि' कारण्डवजी अपनी कविता-कौमुदी की अपूर्व छटा छिटकाने के लिए खड़े हुए। आप वहुत देर से व्याकुल वैल की तरह रस्से तुड़ा रहे थे। आज्ञा किसी अन्य कवि को दी जाती थी, उठ आप खड़े होते थे। ख़ैर, अबकी बार राम-राम करके आपका अवसर आ ही गया। कारण्डवजी ने करताल कर मे लेकर मूंछे मरोड़ते, आंखे सिकोड़ते और तान तोड़ते हुए, साफे को सम्हाल-सम्हाल कर, ऊँची आवाज़ से, नीचे लिखी कविता कथ कर सुनाई—

धरम के कारणें जी, भाइयो! तन-मन-धन सव दे दो।
रच्छा करो धरम की धुन ते, धरम वड़ो है भाई।
धरम के कारन धरमदत्त ने देखो जान गँवाई॥
धरम के कारणें जी . .
धरम-धरम की धूम मचाओ, धरम-धुजा फहराओ।
धरम ओढ़लो, धरम बिछालो, धरमी सव वन जाओ॥
धरम के कारणें जी, धरम के कारणें जी—
धरम के कारणें जी, भाइयो! तन-मन-धन सव दे दो।

कवि कारण्डवजी अभी अपनी भूरि भाव-भरित कविता की दो तीन कड़ियाँ ही पढ़ने पाए थे कि लोग सरसे साफा बाँध, मोटा सोटा ले, गले मे गुलूबन्द लपेट कर धर्म पर बलिदान होने को आ खड़े हुए! 'जीवन-दान', 'जीवन-दान' की आवाजें आने लगीं, धन्य-धन्य की धूम मच गई। सभापतिजी ने भी, कारण्डव जी की चोच चूम कर स्पष्ट शब्दो मे कहा—"भाई, बस, इस आधुनिक युग मे आप ही एक कामयाब कवि हैं। विराजिये, इस समय शीघ्रता है। आपकी 'पद्य-पाढ़न्त' के लिये तो पूरे पाँच घटे दिये जाँय, तब कही श्रोतृ-समुदाय की संतृप्ति हो। ओहो!—आप की कविता क्या है, 'फायर ब्रिगेड' का इञ्जन या तूफान ट्रेन का भोंपू है। धर्म, जिस पर जगत् स्थिर है, उसके आप जैसे परम प्रवीण प्रचारक धन्य हैं।'

कवि कारण्डवजी की 'कुकड़ूंकूं' समाप्त होते ही, घटनाघन ममण्ड घोघा घुग्घू घासलेटानन्दजी अपनी अकड़ में घोर घोषणा करते हुए, उसी प्रकार बिना बुलाए पञ्च बन मञ्च पर आ आरूढ़ हुए जिस प्रकार 'साइमन-सप्तक' भारत के भाल पर आ धमका था! सभापति श्रीगरुड़देवजी ने गुस्से से गुर्राते हुए कहा—"अच्छा! पढिये, पहिले आप ही पढ़िये।" तब श्री घासलेटानन्द जी ने अगाई-पिछाई तोड, और कुण्डे-कुण्डी फोड़ कर, साहित्य-क्षेत्र का सुविस्तीर्ण मैदान मार, महा मोद मनाते हुए, नीचे लिखा सरस आलाप करना शुरू किया—

गोविन्द-भवन की कथा सुनो, वेश्याओं के अड्डे देखो,
लो, लोट 'लाटरी' के लुटते, बाजारों में सट्टे देखो।
लडकों पर प्यार करें टीचर, वह चाकलेट-चरचा सुनलो,
विधवा व्यभिचार-प्रचार करें, सो सुनो, शोकसे सिर धुनलो।

× × × × × ×

हाँ, एक एक करके तुमको, सब विस्तृत बात बताता हूँ।
परदे में पाप करें कैसे? सो सब तुमको समझाता हूँ॥

श्रीघासलेटानन्दजी की अभी भूमिका भी समाप्त नहीं हुई थी कि काक, कंक, कारण्डव, कीर आदि कवियो ने कोपपूर्ण 'कॉव-कॉव' करनी शुरू कर दी। "नहीं, नहीं, हम यहाँ ऐसी विचित्र विधि सुनना नहीं चाहते। घासलेटानन्दजी, बैठ जाइये! इस सारहीन सिखावन से संसार को बख्शिये।" इसके विपरीत दूसरे कवियो ने कहा—"कहिये, कहिये, जरूर कहिये। बराबर सिलसिला जारी रखिये। जाति-जागृति का जतन जितनी जल्दी जनता को जताया जाय उतना ही अच्छा है। कहिये, कहिये, घासलेटानन्दजी कहिये"—की आवाजो ने कविवरजी का नाक मे दम कर दिया। वे 'हाँ'-'ना' की खीचा-तानी में 'त्रिशंकु' की तरह बीच ही मे लटक गए! युगल चुम्बक के मध्य मे पड़ी सुई की तरह सिटपिटाने लगे!! अड़ें या बढ़ें, हटें या डटे, चहकें या बहकें, जमे या रमे उन्हे कुछ न सूझ पड़ा। अन्त मे श्रीसभापतिजी के आदेश से आप अधवर ही में बैठ गए और विरोधियों की बुद्धि पर बड़बड़ाते हुए अपनी अक्ल की स्तुति करने लगे।

इतने कवियों की कविताएँ सुनी जाने के बाद 'टकापंथ-प्रवर्त्तक' कविवर कुक्कुटराज काव्य-कानन में कूदे। आपके 'कुकड़ूकूँ' करते ही जनता ने हर्ष-ध्वनि की और उत्सुकता के साथ वह उन की ओर देखने लगी। कुक्कुट कविजी 'बहर-ए-तबील' में बलन्द बाँग देते हुए बोले—

वोट दे दो रे! भाई, भिखारीमल को।
लोगों की बातों में हरगिज़ न आओ,
खद्दर न पहनो, न जेलों में जाओ;
है, चुङ्गी चुनाव चलो कल को,
वोट दे दो रे! भाई, भिखारीमल को।

वढ़-बढ़ के लाला ने दावत खिलाईं,
कोठी, हवेली, दुकानें बनाईं।
सीधे हैं, जानें न छल-बल को।
वोट दे दो रे! भाई, भिखारीमल को॥

अहा! कुक्कुट कवि की इस परोपकारवृत्ति पर सब कवियों ने साधुवाद की सिल सरकानी शुरू की, 'मरहबा' की मटकिया फोड़ दी और 'वाह-वाह' की बाँह तोड़ दी! धन्य हैं, ऐसे अशरण शरण कविराज! देखिये न, सेठजी के लिये. आपके दराज़ दिल-दालान में कैसे-कैसे प्रेम के पीपे भरे पड़े हैं। वाह! वाह!! खूब!!!

इसके अनन्तर सभापतिजी ने कविरत्न क्रौञ्चजी से कविता सुनाने को कहा। परन्तु वह बोले—"जब तक मेरे लिये आनन्द पूर्वक आसीन होने को विशुद्ध व्यास-गद्दी न दी जायगी, तब तक मैं अपनी कथा कदापि नहीं सुना सकता। हाँ, हारमोनियम और तबले की भी व्यवस्था करनी होगी।" सभापतिजी ने बात की बात में सब समुचित प्रबन्ध कर दिया। तब कविजी ने ऊँची आवाज़ से नीचे लिखी कविता गाकर सुनाई—

तव बोले साधू सुबुध, सुनों सभी धर ध्यान।
कथा आज की का विषय, है अध्यातम ज्ञान॥
संसार दुखों का सागर है, आओ, मिल-जुल सब स्वर्ग चलें।
सानन्द रहें, नन्दन-वन में, लखि-लखि हमको सब हाथ मलें॥
हमें धर्म-ध्वजा की धज्जी हैं, उपकार-'कार' के 'टायर' हैं।
कविता-कुर्सी के पाये हैं, सारङ्गी के सब 'वायर' हैं॥
सब उठो, बाँध लो बस बिस्तर, उस अमरपुरी के जाने को।
तुलसी, केशव और सूर जहाँ, आवेंगे हाथ मिलाने को॥

क्रौञ्च कवि की कविता सुन कर लोग मारे क्रोध के काँपने लगे। "आया कहीं का कठमुल्ला! हमें स्वर्ग ले जाना चाहता है। अरे, पहले इस दुनियां का आया-गया तो देखलें; यहाँ तो विजय

का बैण्ड बजादे, तब कहीं स्वर्ग-नरक का नम्बर आवेगा। धिक्कार! धिक्कार!! ऐसी क़ातिल कविताओं की जरूरत नहीं है। सभापतिजी, बन्द कीजिए। इस वैराग्य के विषैले विषधर को बिल मे ही बिलबिलाने दीजिये। उपरामता के उजबक उल्लू को प्रतिभा के प्रकाश मे न आने दीजिये।"

बूढ़े सभापतिजी को क्रौञ्च कवि की कथा में बड़ा आनन्द आया। आपने बार बार चोंच चलाई और गरदन हिलाई। परन्तु जनता के वैराग्य-विरोधी होने के कारण क्रौञ्चजी की मुख-मढ़ी पर, मजबूरन '१४४ लीवर' का ताला ठोक देना पड़ा।

इस समय सभापतिजी ने कहा—"महाशयो, वक्त अधिक हो गया है, इसलिए कविवर कोकिलकुमार और कुल्लूक कविराज इन दो कवियो को अपनी-अपनी कविताऐं सुनाने का और अवसर दिया जायगा। बस, फिर पदक-पुरस्कार की सूचना देकर सम्मेलन समाप्त हो जायगा। अब 'प्रतिबिम्ब-पन्थी' काव्य-कानन-केसरी कवि कोकिल-कुमारजी अपनी कविता सुनावें और अपने काव्य-कल्पतरु की छबीली छाया से सारे सभ्य-समाज को सुख पहुँचावें।" कोकिल-कुमारजी ने अपनी निगूढ़तम रुचिर रचना को सुनाते-सुनाते, सब लोगों को अज्ञेयवादवारिधि में डुबकी लगाने का आनन्द प्राप्त कराया। कोकिलकुमारजीने अपटूडेट फ़ैशन की फबीली फसाहत के फन्दे मे फँस कर नीचे लिखी अलौकिक कविता पढ़ी—

विरद वाद्य मृदु मन्द अचलता के दृगता अञ्चल में—
सुस्मित मत विस्मृत वाला के अनुनय अन्तस्तल में—
अभिधा की अनन्त आभा में सविधा के साधन में—
विभावरी. आभरी, अनिलभा के उदोत आनन में—

× × × × × ×

सुरति सदय सन्दर्भ सुसयत नय नवधा नागर में-
विश्व विमोहन विपुल व्यथा के प्रभुता पांशु पगर में-
वरद विभा के वक्षस्थल में मृग-मरीचिका पट पर-
तरुणी के घटना घूँघट पर तरंगिणी के तट पर-

× × × × × ×

सौख्य सुधामय मनस्विता में मानहीन मानस में-
भौतिक तारतम्य सत्ता के पुण्य प्रेम पारस में-
प्रवर्तिता प्राञ्जलि नलिनी के नव नीरव गायन में-
सभ्य, सुरम्य, गम्य कानन में प्रतिभापूर्ण पवन में-

कवि कोकिल-कुमार की दार्शनिकता देखकर सारे सभासद दंग रह गये, सब लोग अपनी अड़ियल अक्ल को धिकारते हुए उनकी पुण्य-पंक्तियो की प्रशंसा करने लगे। 'धन्यवाद' के धुँगार और 'वाह-वाह' के बघार से सारा समाज सौरभित हो उठा।

सभापति श्रीगरुडदेवजी तो इस कविता के परम दार्शनिक तत्त्व को समझने के लिए समाधि लगा गए। परन्तु तो भी यह नितान्त निगूढ 'रहस्य' उनके महा मस्तिष्क मे न आया। यहाँ तक कि उनकी प्रदीप्त प्रतिभा पर उनके आध्यात्मिक अर्थ की 'छाया' भी न पड़ी। अन्त मे आप निराशावाद के वायु से बह कर आगे बढे और "ख़ैर" कहकर श्रीकुल्लूक कवि से पद्य-पाठ के लिए प्रार्थना की।

कुल्लूक कविजी अपनी क़लम-कटारी और स्वच्छन्दता की आरी लेकर कविता-कामिनी के कलित कलेवर की ओर झपटे। वह विचारी बलात्कार से बचने के लिये त्राहि! त्राहि!! करने और बिना आई मरने लगी। करुणा का सागर उमड़ उठा, और दयालुओ का दिल घुमड़ उठा। अस्तु, सबसे प्रथम कविवर कुल्लूकजी ने जनता को नीचे लिखा स्वच्छन्द छन्द सुना कर

दोनों हाथों से 'वाह-वाह' बटोरनी शुरू की, आप अपनी अद्भुत शान मे बोले—

खट्वा!

ओहो! चतुष्पदी, निष्पदी तथा—
निर्भ्रान्त, अलक्षिता,—एवम् सापेक्ष सत्ता, सुरम्या—
महत्त्वमय—'मत्कुण' सेविता
'तक्षा' एवम्—
रथकार ' ' .... ''शयनाधिकार संयुक्ता
सम्पृक्ता—सुकीर्तिता!
सुधीन्द्र, 'रज्जु'—'रसरी'!
रता—नताः एवम् 'अवनता' !!!

कुल्लूक कवि की वदन-बांबी से क्रान्ति-कारिणी कविता-काकोदरी के निकलते ही सारे कविसमाज मे आनन्द की आँधी आगई! प्रसन्नता का पुल टूट पड़ा! साधुवादो का पजावा लग गया! "वाह! कुल्लूकजी, क्या कहने हैं? आपने तो छन्द-छैला की छाती मे छुरी भौंक दी, पिंगल के पिटारे पर पत्थर पटक दिए, अलंकार अलबेले की अंतड़ियाँ निकाल ली, रस मे राख मिलादी और भावो को भट्टी मे भून दिया।"

बड़ा ऊधम मचा, पार्टीबन्दी के पटाखे और गुट्टबाज़ी के गोले छूटने लगे। वाग्बाणो की वर्षा तथा विरोध के बवंडर ने नाक मे दम कर दिया!

सभापति श्रीगरुडदेवजी इस काव्य-विप्लव को देख कर दङ्ग रह गये! कुल्लूक कवि की कविता हुई या विद्रोह की बारूद जल उठी! इसे कवि-सम्मेलन कहे या 'अनारकी' का अड्डा? सहृदयता है या संगदिली? शान्त! शान्त!! मित्रो, शान्त! सज्जनो, शान्त! —देखो, कवि-सम्मेलन मे कविता-कामिनी पर अत्याचार न करो,

इस अनघा अवला को अपने आवेशपूर्ण कोप-कुल्हाड़े का दुर्लक्ष्य न बनाओ। ठहरो, सुनो। मैं अपना अन्तिम भाषण स्थगित कर पदक-पुरस्कार की घोषणा करता हूँ—

"कविराज कङ्कदेव, कविरत्न क्रौञ्च तथा कविवर कारण्डवजी इन तीन सज्जनो की कविता सर्वोत्तम रही, इन्हे रत्नजटित हारों की लडियाँ तथा स्वर्णमय पैजनियाँ प्रदान की जावेगी। अब सबको धन्यवाद देकर सभा विसर्जित होती है।"

सभापतिजी की उपहार-घोषणा सुनते ही चारो ओर से "और हम ?", "और हम ?" का तूफान उठ खडा हुआ। इतने कवियों मे से केवल तीन !!! ऐसा अत्याचार ! इतना अन्धेर !! यह जुल्म !!! पकड़ लो पक्षपाती प्रेसीडेण्ट को, मारो मनहूस को, फोड़ दो खोपड़ी, तोड़ दो तोमड़ी ! आया कहीं का साहित्य-सिरकटा ! देखो, भागा, भागा, दुम दबाकर भागा, मुँह छिपा कर निकला,—पकड़ो-दौड़ो, निकल न जाय, उड़ न जाय, कचूमर निकाल दो, क्या हमने कविताएं नहीं सुनाई ? हमने दिमाग का सेरो खून नही खर्च किया ? क्या हम 'कवि' नहीं है ? हमको पुरस्कार क्यो नहीं ? मारो, मारो, देखना कहीं भाग न जाय। भागा, पकड़ो, पकड़ो !" निदान इस समय कवि-सम्मेलन मे ऐसा धूम-धड़ाका हुआ, ऐसा शोर-सनाका मचा, इतना तूफान-ए-वेतमीजी उठा कि अपनेराम की निद्रा टूट गई, सारा स्वप्नमय साहित्य-संसार नष्ट होगया। अदृश्य जीवन के छायावाद के बदले दृश्यमान जगत् का जड़वाद दिखाई देने लगा। कवि कारण्डवो की कल्पना-कुरंगी की कुलाचों के स्थान पर दुरंगी दुनिया सामने आ गयी। उठा, शौच-वाधा से निवृत्त हुआ; कलेवा किया और अपने काम में लग गया।

लीडर-लीला

लीडर एक ख़ास क़िस्म का समझदार जन्तु होता है, जो हर मुल्क और मिल्लत मे पाया जाता है। उसे क़ौम के सर पर सवार होना और सभा-सोसाइटियो के मैदान मे दौडना बहुत पसन्द है। उसकी शक्ल-ओ-सूरत इन्सान से बिल्कुल मिलती-जुलती है। वह गरमियो मे अक्सर पहाड़ो पर किलोल करता मगर जाड़ो मे नीचे उतर आता है। देखने मे लीडर सादा सा दिखाई देता है, पर हक़ीकत मे वह वैसा नहीं है। खाने की चीजो मे उसे सेव, सन्तरा, अंगूर, केले, अनार वगैरा क़ीमती फल ज्यादा पसन्द है। दूध तो उसकी ख़ास गिज़ा है। मौक़ा पडने पर गल्ले के पूड़ी-पकवान को भी गले मे उतार लेता है, मगर बहुत खुशी के साथ नहीं।

कहने को तो लीडर जन्तु है, मगर उसमे खुददारी का जज़्बा खूब जोशज़न रहता है। वह अपने ख्याल के ख़िलाफ न कुछ सुन सकता है, और न पोजीशन को कम होते देख सकता है। जिस तरह सरकार को सोते-जागते, उठते-बैठते, 'पीस एण्ड आर्डर' (शान्ति और सुव्यवस्था) का ध्यान रहता है, उसी तरह लीडर अपनी तक़रीर और तारीफ अख़बारो मे छपी देखने के लिये फिकरमन्द नज़र आता है। वह औरो को अपने पीछे घसीटता मगर ख़ुद किसी के साथ खिचड़ना पसन्द नहीं करता। जिस वक्त इस अजीव जन्तु के जिगर मे क़ौम का दर्द उठता है उस वक्त वह इतना वेताव हो जाता है कि कभी तारघर की ओर दौड़ता है और कभी डाकख़ाने की ओर कवड्डी भरता है। ज्यादा दर्द होने की हालत मे उसकी वेचैनी का ठिकाना नहीं रहता।

यहाँ तक कि बड़े बड़े मजमो में खड़ा होकर बेतहाशा चीखता-पुकारता है। टेबुल पर हाथ मारता है और ज़मीन पर पाँव फटकारता है। आँखें सुर्ख़ कर लेता और दाँत पीसने लगता है। मुँह बनाता और हाथ घुमाता है। इधर को झुकता और उधर को झूमता है। इसकी ऐसी हौलनाक हालत देख कर लोग उसके पास पानी या दूध का प्याला रख आते है जिसे वह चुस्की ले ले कर पीता मगर चिल्लाना बन्द नही करता।

कभी कभी इस जन्तु की परेशानी, "ख़ूख़्वारी" मे तबदील हो जाती है तो उसके लिये उसे मियादे मुक़र्ररा के लिये लाल फाटक के बड़े बाड़े मे बन्द रहना पडता है, जहाँ न उसे हस्ब ख़्वाहिश दाना चारा मिलता है और न मजेदार मैदान ही नसीब होता है। इस दुनिया मे आकर पहले तो लीडर गुर्राता है मगर कुछ दिनो बाद उसकी हालत पालतू बकरी की तरह हो जाती है।

यह अजीब जन्तु अपने पाँव पर चलना बहुत कम पसन्द करता है। रेल के गुदगुदे गद्दे और मोटर के मुलायम तकिये देखकर उसकी तबियत बागबाग हो जाती है। घटिया सवारियो पर सवार होना उसे अच्छा नही लगता बल्कि वह वैसा करना कसर-ए-शान समझता है।

लीडर मे एक बड़ी खसूसियत है। अपने बुलावे की डाक द्वारा सूचना पाकर उसकी 'सेहत ख़राब' हो जाती और 'अदीम-उल-फ़ुरसती' सामने आ जाती है। मगर ज्यो ही अरजेण्ट टेलीग्राम पहुँचा त्योही वह तन्दुरुस्त हुआ और उसने अपनी रवानगी का तार खटखटाया। दुनिया इधर से उधर हो जाय पर लीडरी तार का कुतार न होना चाहिये। अगर रवानगी का तार पा बहुत से लोग, फूलमाला लेकर, इस्तक़बाल के लिये रेलवे स्टेशन पर नही पहुँचते, तो लीडर बुरी तरह बड़बड़ाता और बिदक जाता है। कभी-कभी तो उलटा वापिस होते हुए भी देखा गया है।

लीडर जन्तु सड़ी-गली हवेलियो मे रहना पसन्द नहीं करता, उसे फर्स्ट-क्लास कोठी के बिना चैन नही और न नीद आती है। यह बाते करने में बड़ा कंजूस होता है, छोटे लोगो को तो पास भी नही फटकने देता। हाँ, कुछ बड़े आदमियो से घड़ी सामने रख कर थोड़ी देर गुफ्तगू करने मे ज्यादा हरज नही समझता।

ओहो! जिस समय इसे '१४४' नम्बर की लाल झंडी दिखाई जाती है, उस समय तो उसकी वही हालत हो जाती है जो बालछड़ या छारछबीला सूंघने वाली बिल्ली की होती है। कभी वह झंडी को फाड़ने के लिये दौड़ता है, कभी पीछे खिसक जाता है। कभी उछलता है, कभी कूदता है और कभी दूर से गुर्रा कर रह जाता है।

जिस प्रकार भेड़िया भेड़ को पुचकारता है उसी प्रकार लीडर पब्लिक के पैसे पर प्यार करता है। हिसाब-फहमी का प्रश्न उसकी 'इन्सल्ट' और जीवन-मरण की समस्या है। बाहरी दुनिया मे लीडर लोगों को जैसा पुरजोश दिखाई देता है, वैसा वह अपनी गुफा में नही नज़र आता। क्योंकि उसकी घरेलू और बहरेलू दो तरह की ज़िन्दगी होती है। जो लोग इस रहस्य को नही जानते वे अक्सर धोखा खा जाते और तकलीफ उठाते है।

लीडर जन्तु के मिलने-जुलने के भी कई तरीक़े हैं। किसी से वह खिल-खिला कर 'शेकदुम' करता है, किसी के साथ आधी हँसी हँसता है, किसी के आगे उदासीनता दरसाता और किसी के समक्ष मुँह फुला कर और भौह चढ़ा कर अपने मनोभाव प्रकट करता है। जिसके भाग्य में जैसा बदा हो वैसा ही उसके साथ व्यवहार होता है। साधारण लोगो की शक्लो को जानते-बूझते भूल जाना और उनके किसी ख़त का उत्तर न देना लीडरेन्द्र की ख़ास ख़सूसियत समझनी चाहिये। लीडर की पोशाक बड़ी

विचित्र होती है। परिस्थिति को देख उसे रंग बदलना ख़ूब आता है। कभी बढ़िया लिबास इख़्तियार करता है तो कभी खद्दर की झूल लाद कर ही खुश हो जाता है। कभी-कभी ताम्बे के तार मे शीशे के दो गोल-गोल टुकड़े हिलगा कर आँखो के ऊपर रख लेता है। झूल के थैलो मे एक ओर स्याही भरी सटक लटकती रहती है और दूसरी ओर समय बताने वाली डिब्बी का दिल धड़कता रहता है।

एक दो नहीं, लीडर सैकड़ो और हज़ारो तरह के होते है। कोई राजनैतिक मैदान मे उछल-कूद मचाता है, किसी ने अगाई-पिछाई तोड़ कर धार्मिक क्षेत्र मे द्वन्द मचाना शुरू कर दिया है। कोई लीडर समाज-संशोधन की सड़क पर कुलाचें भरने मे मस्त है। इनके भी हज़ारो भेद-उपभेद हैं। सबका वर्णन करने के लिये बड़ी पोथी चाहिये। अगर मौक़ा मिला और मजलिस भी जमी तो चैत्र कृष्णा प्रतिपदा की सभा मे इस विषय पर विस्तृत व्याख्यान दिया जायगा। सब लोग उस दिन हवाई क़िले के लम्बे-चौड़े मैदान मे, रात्रि के ठीक पौने तीन बजे पधारे।

घसीटानन्द की घें घें !!!

सुनो जी, सम्पादकजी ! बात सुनो; हम ऐसे वैसे, ऐरे ग़ैरे, अधकचरे, कुलेखक तो है ही नही, जो सोच-विचार कर या तबियत के "पैण्डुलम" को थाम कर कुछ लिखने बैठें। हम तो ठहरे सुलेखक और सुकवि-नही-नही-कवीन्द्र और सुलेखकेश्वर! जिस समय लिखने लगते हैं उस समय क़लम कुरङ्गी की सी कुलाचे भरती हुई काग़ज़्-कानन मे खूब ही किलोल करती है। काले मुँह की लेखनी से जो निकल गया, धनी के भाग! हमारी तहरीर क्या होती है, खुदा का फरमान होता है। मगर क्या बतावे, आजकल तो कुछ हमारा उत्साह फिक्र के शिकंजे मे ऐसा कस गया है कि कुछ लिखने को ही जी नही चाहता। जब तबियत मे जोश ही नही तो फिर क्या—

"गौहरे मज़मूँ निकलते है, मगर बेआबदार-
जब कि दरियाये तबीयत जोश पर होता नही।"

नहीं तो जनाब! इस बन्दे नातवाँ ने अपनी अस्सी-नव्वे बरस की ज़रा सी उम्र मे जो मलिका हासिल किया है, वह किस कम्बख्त की क़िस्मत मे बदा था? एक-एक दिन मे दो-दो तीन-तीन गद्य-पद्य मय विस्तृत पुस्तके तैयार कर देना तो ईजानिब के दस्ते मुबारिक का मामूली करश्मा था। बन्दे की लेखनी की द्रुत गति देख कर देखने वाले 'पञ्जाब मेल' की हँसी उड़ा कर फकफक

करने वाली मोटरकार पर फक्किका फेका करते थे। अब हम नही समझते कि लोग छन्द-शास्त्र और अलङ्कार-ग्रन्थो को पढ़ कर क्यो अपने समय को नष्ट-भ्रष्ट किया करते है ? हमे तो अपनी जिन्दगी भर में बखुदा इन ऊल-जलूल बातो की जरूरत ही नहीं पड़ी ! हमने तो आज तक इन किताबो के दर्शन भी नहीं किये !! मगर—शायरी ! ओहो ! बस गजब की होती है ! शायरी की शोहरत तो यहाँ तक बढ़ गई है कि साधारण कोटि के आदमी तो क्या बड़े-बडे साहित्य-शत्रु भी उसकी मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा करते और दाद देते हैं । नीचे लिखी दो पंक्तियों पर तो 'वाह-वाह' के पुल बँध गये। दिल थाम कर और ज़रा होश सँभाल कर सुनिये—

हेच ऐंगज़ाइटीज़ न कर्त्तव्यम्
कर्त्तव्यम् ज़िकरे खुदा,
खुदा ताला प्रसादेन—
सर्व कार्यम् फ़तह शवद ।

मगर अब हमे बड़ा अफसोस होता है कि स्वतन्त्र विचार के हम जैसे 'निरंकुश कवि' भी कविता-कामिनी के कोमल कलेवर को कठोरता की कसौटी पर कसना चाहते हैं। चाहिये यह कि शायरी की घोड़ी की लगाम उतार कर उसे बड़ी आज़ादी से विना अगाई-पिछाई के हिनहिनाने दिया जाय। खैर-हाँ, एडीटर साहब, यह तो बतलाइये कि ये 'साहत्त समेलीन' क्या बला है ? हमें तो ऐसी नई-नई बातें पसन्द आती नहीं। भला देखिये तो,

उस साल हमने अपने नवनवोन्मेषशाली मस्तिष्क का सेरो खून खर्च कर पूरे सवा दो सेर का पुलन्दा "साहत्त के परधान" को 'समेलीन' मे पढ़ने के लिये भेजा था मगर उसका वहाँ किसी ने नाम भी नही लिया। हमारी नाबीना शायरी के पुरजोश मज़ामीन पर यह 'सेन्सर' का काम कैसा ? भला यह कोई बात है कि छन्दो के नियम, अलङ्कारो का उपयोग, रसो का संचार, भावो की भरमार आदि बातें न हों तो हमारी "शुहर-ए-आफाक़" शायरी को लोग शायरी ही न कहें। बाप रे बाप। यह नई-नई बातें कहाँ से आ गई ? कैसा ज़माना हो गया ? अघटित घटना घटने लगी। लोग हम जैसे शायरों की दिल-शिकनी करने में ज़रा नहीं हिचकते, जो हो, नई रोशनी के दिलचले लोग चाहे जो करें पर अपने राम तो 'राई घटें न तिल बढ़े' वही पुरानी लकीर पीटते हुए, 'घे-घे' करे ही जायेंगे।

"प्रैक्टीकल-परमार्थ"

अरे साहब ! अर्थशास्त्र-अवधूत की अर्थी उठाकर, तिजारत-तवाइफ का तबला बजाना शुरू किया तो उसका भी फड़ाका उड़ गया ! चाकरीचन्द्रिका का चाहक चकोर बना तो वहाँ भी क़िस्मत की कृपा से "कोरम कोर चौबाल सौ !" मूज़ी मालिक ने साफ सुना दिया और खुले ख़ज़ाने कह दिया—

चाकर है तो नाचा कर,
ना नाचे तो ना चाकर।

सो, दोस्त, चाकरी-चक्र मे चकफेरी भरते-भरते जोश का जनाज़ा निकल गया ? तनदुरुस्ती के ओंधे नगाड़े हो गये और साथ ही तोंद की भी कुकुड़ुमकूँ बोल गई !! इधर नौकरी की मार उधर फिकिर की फटकार ! दोनो मिलकर एक और एक ग्यारह हो गये ? दस खाऊ एक कमाऊ ! बाप रे बाप ! जीवन हुआ या मरना ? आबादी कहूँ या बरबादी ? परिवार है या अत्याचार ? आह ! चिन्ता चुड़ैल ने तो चुप-चुप चुसकी ले-लेकर मेरे सुन्दर शरीर का सारा सार ही निचोड़ लिया ! अब असार संसार में मेरा जीवन भी निःस्सार बन गया। कहाँ जाऊँ क्या करूँ ? इधर जाऊँ या उधर मरूँ ? नाक मे दम है और कान मे ऑखें। बड़ी परेशानी ! सख्त मुसीबत !! भाग्य-भड़वे को बहुतेरा तलाश किया ज़ोरो से पुकारा, चीख़-चीख़ कर आवाज़ दी, मगर वह हरामी किस की सुनता है। अन्त को अपने राम से न रहा गया और चाकरी चुड़ैल को चूल्हे मे झोक कर बन गये पूरे "निखिलतन्त्र स्वतन्त्र।" प्रारब्ध-पिस्तौल मे कुयश-कारतूस डाल कर लगे दानियो

के द्वार पर दनादन दागने! पौराणिक लोग जिस गुणपुञ्ज गोमाता की पूँछ पकड़ कर वैतरणी तरते हैं, उसके 'नाम मात्र' ने मुझे परिवार-पारावार से पार कर दिया! फर्श से अर्श पर जा बैठाया!! जिस हिन्दू-हृदय के आगे गोरक्षा के नाम पर गोलक गुनगुनाई उसी ने अण्टी टटोल या बटुआ खोल कर गोल-गोल ताम्रटंक इस 'परमार्थ' पेटी में पटक दिये। किसी ने इकन्नी की कन्नी दबाई और कोई दुअन्नी को 'दरिया-ए-शोर' करने लगा। कितने ही भड़ये तो चाँदी के चिलकट्ये हमारे हवाले कर मूँछें मरोड़ने लगे। जिस समय अपने राम रेल के डिब्बे में कड़कती हुई आवाज से गोरक्षा का गीत गाते थे उस समय श्रोता मग्न और वक्ता प्रसन्न हो जाते थे। अहा! अच्छी अपील की! खूब चिड़ियाएँ फाँसी!! बड़ी सफलता हुई!!! इन भोंदू भक्तों से काफी टके हाथ लगेंगे और घर चल कर विविध व्यञ्जन छकेंगे।" चमचमाती चपरास, लपलपाती रसीद-बही, और गुनगुनाती हुई गोलक ने तो लोगों पर रौब डाट दिया। अगर कहीं हमने अपने गिरा-ग्रामोफोन पर गो-रोदन रूप रेकर्ड चढ़ा दिया तब तो बाजी ही मार ली! सोने में सुगन्ध आ गयी!! गिलोय नीम पर चढ़ गयी!!! हमारी गगनवेधी गर्जना ने थर्ड तो थर्ड सैकिण्ड और फर्स्टक्लास तक के मुसाफिरों के कानों पर तड़ाक से तमाचा जड़ दिया। वे भड़भड़ाते हुए उठे, और पूछने लगे—"क्या" एकचुअली "कुलीज़न", हो गया! "यह था बन्दे की वाणी का प्रभाव और आमदनी भाव।'

अच्छा-फिर? फिर क्या, लगी ईंट पर ईंट सवार होने और कन्नी खटकने। ग्राम भी ख़रीदे और धाम भी बनाये। विवाह भी किये और खुशियाँ भी मनाई। हिसाब?—हिसाब? आखिर किसी के दादा का कुछ देना था जो हमसे कोई हिसाब-फहमी का मुतालबा करता। अरे, पबलिक का पैसा पबलिक के पास! किस का लेना और किस का देना? कहाँ का जमाख़र्च और कैसी

रिपोर्ट ? हमने जो प्रचण्ड पुरुषार्थ किया था अब उसी का अनु-सरण हमारा शिष्य-समुदाय भी कर रहा है। चेले मॉग-मॉग कर लाते हैं और अपने राम बैठे मौज उडाते है। "आल इण्डिया गोशाला" के दालान मे दूध के दरिया बहते और घी के घान पड़ते है। बैलों की बहादुरी ने अलग खेतो को खुश–किस्मती अता कर रक्खी है। "अखिल भारतीय संस्कृत विद्यालय" भी अपना अच्छा काम कर रहा है। विद्यार्थी-वृन्द और अध्यापक महाशय को मेरी चाकरी और चापलूसी से फ़ुरसत मिल जाती है तो वे भी सप्ताह मे, एक घण्टे किसी दरख्त के नीचे बैठ कर "टभ्यामभिस्" कर लेते है। लोग मुझे ब्रह्मचर्य का 'ब्रायलर' या सदाचार का 'सन्दूक' समझते हैं। परन्तु जिस समय मैं पोते को बगल में दबा कर, मचान पर बैठा-बैठा हुक्का गुड़गुड़ाता और दाढी फटकारता हूँ उस समय बार-बार भूलने पर भी यह लोकोक्ति याद आये विना नहीं रहती:—

"दुनिया ठगिये मक्कर से।
रोटी खइये शक्कर से।"

चूहों का डेपूटेशन

(रुद्र भगवान् की सेवा में—)

परमगौरवास्पद, महामाननीय, सकल सुख-संहारक, अनेक दुःख प्रचारक श्रीरुद्र भगवान् की श्रीसेवा मे, सादर प्रणाम ! महामहिम ! हम लोगो पर घोर अत्याचार हो रहा है। हमारा सारा जीवन दुःखमय है। हम लोगो को जिस सङ्कट का सामना करना पड़ता है उसका वर्णन करना महा कठिन काम है। मारे तकलीफो के हमारा नाक मे दम है। रात-दिन चैन नहीं पड़ता। कमज़ोर के कन्धो पर भारी भार लाद देना बड़ा अन्याय है। हे रुद्र भगवान् आप ही बताइये, कहाँ तो 'चिऊँ-चिऊँ' कर पेट भरने वाले हम क्षुद्र जीव और कहाँ हाथी की सूंड़ धारण करने वाले "हिज़ हैवीनैस" श्रीलम्बोदर महाराज ! भला हमारा और उनका क्या सम्बन्ध ? परन्तु आप लोग कुछ विचार नहीं करते। 'आव देखते है न ताव,' विना विचारे चाहे जो कुछ कर डालते हैं। रुद्रदेव ! सच बताइये, हम लोग "मुण्डविशाल शुण्डसटकारी भाल त्रिपुण्ड कलाधर-धारी" श्रीगणेशजी के डबल डील को कैसे उठा सकते हैं ? महाराज ! रक्षा कीजिये ! नही तो हम लोगो का अस्तित्व ही न रहेगा। हे देव ! हमारे दुःखो की पराकाष्ठा यही नही हो जाती, और देखिये—"मरे को मारे शाह मदार।" आज कल मृत्युलोक मे हम पर बेडौल तबाही आई हुई है। हमारा वंश धड़ाधड़ नष्ट हो रहा है, हम लोग लाखो की संख्या मे काल के कवल बन रहे है। हज़रत इंसान को हम पर दया करनी चाहिये, परन्तु ऐसा नहीं हो रहा ! डाक्टर कहलाने वाले विचित्र वेषधारी अजीब जन्तु हमे महामारी फैलाने वाला बताते है, जिसके कारण

लोगो ने ऐसे-ऐसे उपाय सोचे हैं कि हम विना आई मरे जाते हैं। कहीं हमारे घर खोद कर उनमे आग लगाई जा रही है, कहीं हमारे ऊपर मिट्टी का तेल उड़ेला जा रहा है। कहीं 'फनाइल' के छिड़काव से हमारी नाक सड़ाई जा रही है। कोई "एन्टीरैट" का आविष्कार कर हम से वैर निकाल रहा है।

हे भगवान्! क्या करे? कहाँ जायँ? कैसे करें? कुछ समझ मे नहीं आता। हमे मार कर लोगो को सिंह पछाड़ने की सी प्रसन्नता होती है। हम लोगो ने संसार के साथ जो उपकार किया है उसे कोई नही जानता, सब भूल गये। यदि हम लोग शिवलिंग के चावल चबा कर मूलशङ्कर को न चेताते तो दयानन्द बन कर देश का उद्धार कौन करता?

हे रुद्रनारायण! दया कीजिये, कृपा कीजिये, हमारे दुःखो को दूर कर अक्षय पुण्य कमाइये, हम लोग अमूल्य वस्त्र और मोटे रस्सो को काट सकते हैं परन्तु शोक है कि अपना संकट-जाल काटने मे असमर्थ हैं।

हे दयालु! जो कुछ हम लोग आपकी सेवा में निवेदन कर सकते थे, किया। अब आप माई-बाप हैं, जो चाहे सो करे। सम्भव हो तो हमे बचाइये। हमारी ताई घूँसदेवी अब दिखाई नहीं देती, देखना, रुद्रदेव! कहीं ऐसा न हो कि लोगो के अत्याचारपूर्ण व्यवहार से हम भी काफूर हो जावें। आपकी ख़िदमत मे वाजिव जान कर यह सब अर्ज़ किया, अब न्याय करना न करना आप के हाथ मे है।

हम हैं, आपके निहायत गरीब मजलूम—
चूहे लोग।

विनोदानन्द का व्याख्यान

अन्धेर की आँधी चल रही थी, गरदूँ पर गुबार के गट्ठर लदे पड़े थे, धर्महीनता की धाँय-धाँय से धरती धसकी जाती थी, सन्ताप का समुन्दर संकट से साँय-साँय कर रहा था। ऐसा सुखमूल सुसमय पाकर विनोदानन्द का मस्तिष्क-महासागर हर्ष-हुल्लड़ से हिलोरे भरने लगा। उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा और आप अपनी विनोद-वाटिका मे बैठे 'बदी-अलफाज' व्याख्यान बड़बड़ाने लगे—

हज़रात और ख़वातीन! आज तुम लोगो की खुश क़िस्मती या सौभाग्य है जो हम जैसे सुविख्यात व्याख्याता अपने पुरअसर लेक्चर और मुदल्ललवाज़ सुनाने को यहाँ तशरीफ फ़रमा हुए है। हज़रात! बहुत थोड़ा वक्त हुआ जब आपने मुझसे भयकर भाषण या विशाल व्याख्यान सुनने की इल्तजा की थी मगर महाशयान! उस वक्त मै कुछ न फ़र्मा सका था। उसके लिये मुझे आपकी बदक़िस्मती और अपनी कम कृपालुता पर बड़ा अफ़सोस है।

हजरात! आज मेरा दक़ीक़ दिमाग़ दारू से दमक रहा है, तबीअत तबे की तरह तच रही है, मन-मृदंग के मानिन्द मटक रहा है, हृदय मे हर्ष हिलोरें हुर्दंग मचा रही हैं, जिस्म जोश ने जकड़ रक्खा है और कर कर्महीनता में कसे हुए है। ऐसे महा मौजूँ मौक़े पर महाशयो! मै तकब्बुर का तम्बूरा लेकर उन्नति का ऊँचा राग अलापना चाहता हूँ। आप लोग आँखें मीच और कान मूँद कर बड़े ध्यान से सुनिये—

भाइयो ! आज चारो ओर असहयोग का अखाड़ा अड़ रहा है। सर्वत्र सुधार के सवाद सुनाई पड रहे हैं, सारे देश मे स्वराज्य का संग्राम छिड चुका है, हर तरफ खद्दर की खरखराहट दिखाई देती है। आखिर इन सबका सबब क्या है? हमारी राय मे इसका कारण लोगो की खुदगरजी के सिवा दूसरा कुछ नही है। ख़ुदा न करे अगर इन दिलचले दिलावरो ने 'शोराज' का शरबत पी लिया तो फिर हमारी हेकड़ी को कोई कौडी मे भी क्रय न करेगा। इस वक्त देखते हो, हमारी शान के आगे आन मे जहान के कान कट जाते हैं। हमने जिसको जहाँ भिजवाना चाहा भिजवाया, जिस ओर धकेलना चाहा धकेला, जिधर फेकना चाहा फेका। वाहरे हम !–हम क्या हैं–खुदा के खलासी या 'गौड के गार्ड' हैं। बहुत दिनो की बात नही है—जब जनाब ! हमने देखा कि ये 'शोराज' के शिकारी अपने हठ का 'हटर' लिए, अडगधुन मे अकडते हुए आगे बढ़े ही चले जाते हैं और किसी की कुछ नहीं सुनते तो फिर हमने उनको अपनी कलम–कृपाण का चुलबुला चमत्कार भी दिखा दिया ! बडे-बड़े वकील, अड़ीले एडीटर, विलायती बैरिस्टर, विलक्षण व्याख्याता, पठोरे पण्डित और मोटे महाजन सभी को एक लख्त लाद दिया ! फिर क्या था—

पीसो चक्की कातो सूत। पीछे पड़ा जेल का भूत ॥
जो न करोगे पूरा काम। तो फिर उधड़ जायगा चाम ॥

× × × × × ×

सज्जनो ! इन हुल्लड़-पथियो का कारागार मे बन्द होना था कि चारों ओर से खद्दर की ख़रीदारी का ख़ातिमा हुआ। बड़े-बड़े बज़ाज़ जो विदेशी वस्त्र बेचने वालों की शक्लें देखकर बिगड़ उठते थे, मैनचेस्टर का माल मॅगाने मे मसरूफ़ हुए। जिन शानदार दुकानदारो ने विलायती कपड़े को कभी फ़रोख्त न करने का फ़ैसला किया था वे घाटे के चपाटे और फैशन के सपाटे मे ऐसे

फँसे कि प्रचण्ड प्रतिज्ञा को पटपर मे ही चौपट कर दिया ! जिन लोगो के जिस्म पर खरदरी खद्दर का खाता खुला हुआ था, उन पर फिर मुलायम मलमल की मुस्किराहट दिखाई देने लगी। जिन सरो पर गांधी-टोपी का गुदड़गट्ठ रक्खा रहता था, वे फिर 'फैशनेबुल फैल्ट' से फबने लगे—

विकता नही स्वदेशी माल।
बिगड़ा हाय ! हमारा हाल ॥
कौन सहै घाटे की मार ?
किया विदेशी पर फिर प्यार ॥

वास्तव मे आप लोगो को मालूम नही है, 'शोराज' इस तरह नहीं मिला करता, आज़ादी हासिल करने की यह तरकीब नहीं है। 'गोरक्षा-गोरक्षा' चिल्लाने से काम अञ्जाम को नही पहुँचता। उल्टे ज़माने में उल्टे काम करने ही से कामयाबी होती है। लोगो ने धर्म को 'हौआ' बना रक्खा है, जिधर देखो "धरम-धरम" की धकधकाहट दिखाई देती है। भला 'धरम' भी कोई ऐसी ज़रूरी चीज़ है, जिसके पीछे इस तरह हाथ धोकर पड़ा जाय ! कभी-कभी 'वक्तन फ़वक्तन' भोजन के बाद डकार लेते हुए ज़ोर से 'ओ३म्' कह लिया या दस-पाँच वर्षों मे 'धरम' की याद करली, बस है ! साहिबान ! यह 'पालिसी' का ज़माना है, इसमे कहा कुछ जाता है और करना कुछ पड़ता है। मन-वचन-कर्म तीनों मे भेद-भाव रखने वाला ही आज कल आनन्द-सागर मे ग़ोते लगाता है। ओह ! कुछ लोगो पर औरतो को पढ़ाने का भूत सवार है, कुछ लोग हिन्दी की चिन्दी पर ही फ़िदा हैं, कुछ को अछूतो के उठाने की ही सनक लगी हुई है, कोई किसी और ही ख़ब्त मे बहा जा रहा है, मगर ये सब फ़जूल बातें है। भाइयो, अगर तुम्हारा उद्धार हो सकता है तो विलायत वालो से, अगर तुम उठ सकते हो तो विदेशी भावो को लेकर, अगर तुम अधोगति

से वच सकते हो तो गैर मुल्को के 'नक्श-ए-क़दम' पर चलने से। हज़रात! अब तुमको इसके मुतल्लिक दो चार 'अशआर' सुना कर अपना व्याख्यान बन्द करता हूँ। कविसम्मेलन मे पहुँचना है, वहाँ का सभापति मैं ही चुना गया हूँ।

देखिये, श्रीअविद्यानन्दजी क्या कह रहे हैं, उनके उपदेश-प्रद विमल वाक्यो को ध्यानपूर्वक सुनिये—

"सुधी-साधु को मान खाना न दो।
किसी दीन को एक दाना न दो॥
कभी गाय बूढ़ी नही पालना।
किसी मिश्र को दान दे डालना॥

× × × × × ×

रचो ढोंग पाखण्ड छूटे नहीं।
छुआछूत का तार टूटे नही॥
मिले फूट के, बोल बोला करो।
न अन्धेर की पोल खोला करो॥

× × × × × ×

महा मूढ़ता के संगाती रहो।
दुराचार के पक्षपाती रहो॥
जुड़े चौधरी पच पोंगा जहाँ।
न बोला करो बोल बीले वहाँ॥

× × × × × ×

बुरी सीख सीखो सिखाते रहो।
महा मोहमाया दिखाते रहो॥
विरोधी मिलें जो कहीं एक दो।
उन्हें जाति से—पांति से छेक दो॥

× × × × × ×

नही सींचना खेत संग्राम के।
खड़े खेत जोता करो ग्राम के॥
कड़े फूट के बीज बोया करो।
सड़े मेल का खोज खोया करो॥

× × × × × ×

अमीरो, धुआँधार छोड़ा करो।
पड़े खाट के बान तोड़ा करो॥
मजेदार मूँछे मरोड़ा करो।
निठल्ले रहो काम थोड़ा करो॥

× × × × × ×

जहाँ बेटियाँ बेचना धर्म है।
जहाँ भ्रूणहत्या भला कर्म है॥
बनें रण्डियाँ बालरण्डा जहाँ।
वहाँ पाप जीता रहेगा कहाँ॥

× × × × × ×

रूई, नाज देशी दिया कीजिए।
विदेशी खिलौने लिया कीजिए॥
खरी खाँड देशी न लाया करो।
बुरी बीट चीनी गलाया करो॥

× × × × × ×

पराई जमा मारनी हो जहाँ।
अजी! काढ़ देना दिवाला वहाँ॥
करो चाकरी घूँस खाया करो।
मिले वेतनों को बचाया करो॥

× × + × × ×

गवाही कभी ठीक देना नही।
कभी सत्य से काम लेना नही॥

भले मानसो को सताया करो।
खरे खूसटो को बचाया करो॥

× × × × × ×

बहू बेटियों को पढ़ाना नही।
घरेलू घटी को बढ़ाना नहीं॥
पढ़ी नारि नैया डुबो जायगी।
किसी मित्र की मैम हो जायगी॥"

—'अनुरागरत्न'

मि० विनोदानन्द अभी अपनी पुरजोश 'स्पीच' को समाप्त भी न कर पाये थे कि 'औडिएन्स' की 'आफरी-आफरी !' की चिल्लाहट से कानो के परदे फटने लगे, दिल दहलने लगे और फेफड़ो पर फफोले पड गये ! 'वाह-वाह' की 'बहर-ऐ-तवील' ने बेचारे विनोदानन्द की बात बीच ही मे बन्द करदी और इस प्रकार विघ्न-बवंडर ने सारा मज़ा मिट्टी मे मिला दिया !

———

'मतवाला'-'माधुरी' का विवाह !

लीजिए, महाशय ! जिस 'माधुरी-मतवाला' विवाह की सप्ताहो से चर्चा चल रही थी, वह हो गया और बड़े समारोह से हो गया। धूम-धाम का धड़ाका और समारोह का सड़ाका देख कर अपूर्व आनन्द प्राप्त होता था। आज हम पाठको को उसका सविस्तार संवाद सुनाते हैं, कान फटफटा कर और गर्दन झुका कर सुनिये—

'माधुरी' का महल लखनऊ और 'मतवाला' का मन्दिर कलकत्ता मे है। फासला बहुत था। बरातियो ने शिकायत की कि विवाह के लिए कोई मध्यवर्ती स्थान होना चाहिये। इस प्रश्न पर वर-वधू के मध्य बड़ा विवाद रहा। अन्त मे दोनो की राय से बनारस मे रस बरसाना ठीक ठहरा। कुछ 'मतवाला' टस से मस हुआ, कुछ 'माधुरी' ने क़दम बढ़ाये। बस, ठीक समझौता हो गया। बनारस सब को पसन्द आई और वहीं विवाह-सम्बन्ध की ठहरी ! ऐन १९८० की धुलहँडी के दिन बरात चढ़नी शुरू हुई। आगे-आगे सख घड़ियाल बजते जाते थे, कुछ लोगो के हाथ मे सूप छलनी थे, कितने ही लोग 'केरोसिन आयल' के कनबुच्चे कनस्तर पीट रहे थे। 'मतवालाराम' मारे मस्ती के टाँग उठाये तथा त्रिशूल हाथ मे लिये स्वयं ही कुदकते-फुदकते जा रहे थे। कभी-कभी आप "अमिय गरल शशि शीकर रविकर राग-विराग भरा प्याला" वाला गीत गाकर लोगो को प्रसन्न करते थे। बराती लोग अपनी-अपनी पेपर-कारो (Paper-Cars) में सवार थे। 'भारतमित्र', 'बंगवासी', 'कलकत्ता-समाचार', 'विश्वमित्र', 'देश', 'वैद्य', 'वेंकटेश्वर', 'विहार-बन्धु', 'अभ्युदय', 'प्रताप',

'प्रणवीर', 'कर्मवीर', 'विज्ञान', 'विद्यार्थी', 'आर्यमित्र', 'आर्य-मार्त्तण्ड', 'सद्धर्मप्रचारक', 'कर्त्तव्य', 'प्रेम', 'चित्रमय जगत', 'भविष्य', 'वर्त्तमान', 'अर्जुन' आदि सभी गण्यमान्य सज्जन बारात में मौजूद थे। बनारस का 'आज' स्वागत मे संलग्न था, 'सूर्य' प्रकाश करता फिरता था, हिन्दी-केसरी गरजता चलता था, 'भारत-जीवन' भोजन-भण्डार का अध्यक्ष बना बैठा था, 'निग-मागम-चन्द्रिका' 'माधुरी' की आवभगत मे लग रही थी। बड़ी धूम-धाम के बाद बारात 'ज्ञान-मंडल' में पहुँची। बारातियो के भोजन के लिये लाल, पीली, काली, हरी सब तरह की स्याहियाँ—नहीं-नहीं—मिठाइयाँ मौजूद थीं। रहने के लिये २० x ३०, १७ x २७, १८ x २२, २० x २६ इत्यादि अनेक प्रकार के काग़जी महल बनाये गये थे, पर किसी को कोई भी पसन्द न आया। लोग एक कमरे मे बैठ कर परिणय-प्रसंग पर बात-चीत करने लगे। उधर 'माधुरी-मण्डल' का भी ख़ूब ठाठ-बाट था, बड़ी सजा-वट की गयी थी, शोभा देखने ही लायक़ थी। इसके साथ 'प्रभा', 'गृहलक्ष्मी', 'सरस्वती', 'मोहिनी', 'ज्योति', 'आकाश-वाणी', 'श्रीशारदा', 'शिक्षा', 'सम्मेलन-पत्रिका' आदि बीसियो सहेलियाँ अपनी अनुपम छटा से दर्शको का मन मुग्ध कर रही थी। बड़ी चहल-पहल थी। यहाँ का सारा प्रबन्ध 'चाँद', 'महिला-समाचार', 'स्त्री-धर्मशिक्षक' आदि 'मर्दाने-ज़नानो' के सुपुर्द था। अभिप्राय यह है कि वर-वधू दोनो पक्षो मे सब प्रकार की सुव्यवस्था थी। मनोहर गीत गाये जा रहे थे, 'माधुरी' भी 'रामेश्वर' की कृपा से रग बदल-बदल कर अपने सौन्दर्य की छटा दिखा रही थी।

२

हाँ, 'ज्ञान-मण्डल' की बात तो रह ही गई, वहाँ 'वेंकटेश्वर' और 'बंगवासी' ने एक नई लीला रच डाली। ये दोनों कहने लगे

कि ज्योतिष के विचार से बनारस मे विवाह करना ठीक न होगा। जब-जब यहाँ सहयोगियो के सम्बन्ध हुए तब ही तब दुःखद परिणाम निकले है। 'भारत-जीवन' की दुर्दशा देखिये, 'तरंगिणी' के विना कैसा तड़पता रहता है। 'स्वार्थ' और 'मर्यादा' का तो ऐसा अशुभ विवाह हुआ कि आज दम्पति मे से एक भी जीवित न रहा! 'निगमागम-चन्द्रिका' इसी डर से अभी तक अविवाहिता बनी हुई है, नहीं तो क्या वह 'ब्राह्मण-सर्वस्व' से पाणि-ग्रहण न कर सकती थी? 'कर्त्तव्य' ने इस बात का समर्थन किया और कहा—"वस्तुतः कुछ ऐसी ही बात है, कानपुर मे 'प्रताप' तथा 'प्रभा' के विवाह और प्रयाग मे 'अभ्युदय' तथा 'सरस्वती' के सम्बन्ध से क्रमशः 'विक्रम' और 'बालसखा' उत्पन्न हुए पर बनारसी विवाहो का उल्टा ही परिणाम निकला है!" बहुत से सहयोगियों ने इस भ्रम का समर्थन किया पर 'आर्यमित्र', 'अर्जुन', 'आर्यमार्त्तण्ड' आदि को यह बात बहुत नापसन्द आई। उन्होने अपनी दलीलो से इस 'ढिलमिल यक़ीनी' का खंडन किया। बात माक़ूल थी, सबको माननी पड़ी और बनारस मे ही विवाह होने की बात पक्की रही।

इस मौक़े पर 'आर्यमित्र' ने एक बड़े मार्के की बात कही, वह बोला—"माधुरी-वधू से मतवाला-वर तोल-मोल तथा आयु मे बहुत कम है, अतएव इस बेजोड़ विवाह से आर्यसमाजी विचार के लोग सहमत नही हो सकते।" सुधारक-दल 'निस्संदेह', 'निस्संदेह' कह कर 'आर्यमित्र' की हाँ मे हाँ मिलाने लगा। एक बाराती तो बिगड़ कर यहाँ तक कहने लगा—"माधुरी और मतवाला के गुण, कर्म, स्वभाव नही मिलते! ठिकाना है—कहाँ एक सर्वाङ्ग सम्पन्ना सुन्दरी और कहाँ उछलता-कूदता मुँहफट मतवाला! कहाँ वह भारी भरकम रमणी और कहाँ यह निमुच्छा बावला! कहाँ उसकी सुहावनी वेश-भूषा और कहाँ इसकी दिगम्बर देह

पर लिपटी हुई लँगोटी! कहाँ उसका सँभला-सुधरा केश-कलाप और कहाँ इसकी बड़े-बडे बालो वाली खोपड़ी! कहाँ 'माधुरी' के कल-कण्ठ की मनोहर माला और कहाँ 'मतवाला' की गर्दन से लिपटा नाग काला! कहाँ उसके कर-कमल का कलित-कङ्कण और कहाँ इसकी टेढ़ी टाँगो का खुरदरा खडुआ! कहाँ माधुर्य पान करने वाली माधुरी और कहाँ बोतल उडेलने वाला बौड़म! कहाँ खुले हुए सुन्दर-सुघड़ नेत्र और कहाँ मिची हुई औंधी-अनघड आँखे! कहाँ उस सुसभ्या का घूँघट उठाकर झाँकना और कहाँ इस असभ्य का त्रिशूली बन टाँग उठा कर उछ-लना! कहाँ उसकी मुस्किराहट और कहाँ इसकी बडबड़ाहट! कहाँ दो वर्ष की दुलहिन और कहाँ सतमासा शौहर! कहाँ 'माधुरी' की मोहिनी मूरत और कहाँ 'मतवाला' की भौंडी सूरत! 'अन्तरम् महदन्तरम्!—'कहो तो कहाँ चरण कहाँ माथा।'

इसके बाद कई अन्य सुधारको ने भी लम्बे-चौड़े व्याख्यान झाड़े परन्तु जब सब बातें तय हो चुकी थी तब कोई कर ही क्या सकता था?

"मैं तू राजी, तो क्या करेगा काज़ी"

जब 'मतवाला' 'माधुरी' पर और 'माधुरी' 'मतवाला' पर मुग्ध है तो सुधारको के ढोल की ढमाढम सुनता कौन है। सुधार विषयक सब प्रस्ताव व्यर्थ गये? अभी विवाह-संस्कार मे देर थी, अतः बाराती लोग मण्डली बनाकर आपस मे विनोद करने लगे।

'कर्मवीर'—"भाई, 'भारतमित्र' और 'बगवासी' बड़े संयमी हैं, वृद्ध हो गये पर इन्होने आज तक वर्णवाह्य विवाह नही किये। यदि वह चाहते तो बंगाल की 'वसुमती',

'विनोदिनी', 'स्वर्णकुमारी' या ऐसी ही किसी वधू से शादी कर सकते थे, पर उन्होने ऐसा नहीं किया।'

'प्रणवीर'—"क्या 'वेंकटेश्वर-समाचार' किसी गुजरातिन से गँठ-जोड़ा कर वर्णवाह्य विवाह की "वाहवाही" नहीं लूट सकता था? पटेल साहब तो ख़ास गुजरात मे ही हुए हैं पर नही, यह हिन्दूधर्म का 'धग्गड़' ऐसा कर धर्म-भ्रष्ट नहीं हुआ।"

'अभ्युदय'—"'माधुरी' का विवाह 'आर्यमित्र' से होता तो अच्छा रहता क्योकि इसको अपना २५ वर्ष का ब्रह्मचर्य काल समाप्त किये एक साल हो गया।"

'प्रेम—"परन्तु यह बात उसे पसन्द कब आती? वह ठहरा बात-बात मे गुण, कर्म, स्वभाव तलाश करने वाला अक्खड़ आर्य।"

'अर्जुन'—"नहीं-नही, इन दोनो मे परस्पर बड़ा विचार-वैभिन्य है, वह बेजोड़ विवाह हरगिज़ न करेगा। २५, २६ वर्ष के वर को नियमानुसार षोडशी वधू चाहिये।"

'विश्वमित्र'—"माधुरी के साथ 'प्रताप' या 'अभ्युदय' का सम्बन्ध.. . .... ."

'कलकत्ता-समाचार'—"अरे यार, क्या अक़्ल चरने चली गई है, 'प्रभा' और 'सरस्वती' किसकी जान को रोवेगी।"

'वर्त्तमान'—"हमारे समाज में सहयोगियों की अपेक्षा सहयोगि-नियाँ कम हैं, इसीसे ये क़याफ़े लड़ाने पड़ते हैं, वरना—

'मतवाला'—"तुम लोग भी ग़ज़ब कर रहे हो, जिस भलेमानस के विवाह मे आये हो, पहले उसे तो 'चौपाया' बनने दो, बाक़ी सब बौत फिर बौत लेना।"

३

इतनी बातें करते-करते विवाह-वेला आ पहुँची, सब लोग मण्डप मे गये। विवाह का कार्य आरम्भ हुआ, 'ब्राह्मण-सर्वस्व' मन्त्र पढ़ने लगा और 'ब्रह्मचारी' ने क्रिया करानी शुरू की। 'मतवाला' नाचता जाता था और 'माधुरी' संकोच से धरती मे धँसी जाती थी। बाराती लोग क़हक़हा मार कर हँस रहे थे। 'मतवाला' का छोटा भाई 'रसगुल्ला' वर-वधू की ओर इशारा करके कहता था—

"इन सम पुरुष न उन सम नारी।
जनु विरंच सब बात सँवारी॥"

अहा! फेरे फिरने मे बड़ा आनन्द आया, 'मतवाला' की सात डगे माधुरी की एक पदी के बराबर होती थीं, 'माधुरी' चलते मे झुकती जाती थी और 'मतवाला' उचक-उचक कर ऊँचा उठने की कोशिश करता था। ख़ैर, ज्यो-त्यो वैवाहिक कृत्य समाप्त हुआ, 'आकाशवाणी' ने फूल बरसाये, 'ज्योति' ने आर्ती गाई, 'प्रभा' निछावर करने लगी, 'सरस्वती' ने स्वागत किया। दूसरी ओर से वृद्धो ने दम्पति को आशीर्वाद देना शुरू किया।

'भारतमित्र'—

"अचल होहि अहिवात तुम्हारा।
जब तक घिसे न टाइप सारा॥"

'बंगवासी'—

"जीवित रहैं वधू-वर प्यारे।
काग़ज़ फटें न जब तक सारे॥"

'वेंकटेश्वर'—

"जीवित रहै ईश यह जोड़ा।
जब तक वर के कर में कोड़ा॥"

'प्रेम'—

"रहै प्रीति निशिवासर पक्की।
जब तक चलै भूत की चक्की॥"

'अभ्युदय'—

"सारस जोड़ी तबलौं जीवे।
जब लौं 'मतवाला' मद पीवे॥"

आशीर्वाद के बाद बरात तो विदा हो गई, पर वर-वधू के बीच विवाद बना हुआ है। वह कहती है—"तुम्हे लखनऊ के अमीनाबाद पार्क मे रहना पड़ेगा।" वह कहता है—"तुम्हे कलकत्ता के शंकर-घोष लेन मे घर बसाना होगा।" दोनो अपने अपने हठ पर डटे हुए है। विशेषज्ञो का कहना है कि अगर इस विषय मे समझौता न हुआ तो बनारस मे बना रस विष बन जायगा, और फेरो को फेर कर भाँवरों के बखिये उधेड़ने पड़ेगे।

अल्हड़राम की 'रें रें'

हिन्दू, सुनो खोल कर कान।
हो जाओ बिलकुल वीरान॥
ऋषि-मुनियों को जाओ भूल।
काटो वैदिक धर्म-बबूल॥

तृप्यन्ताम्

कायरता पर प्रेम पसार।
करो वीरता का सहार॥
पिटते रहो सिहाय सिहाय।
निकले नहीं नेक भी हाय॥

तृप्यन्ताम्

मन्दिर-मूर्ति होंहि बरबाद।
करो न तुम लेकिन फ़रियाद॥
मिटो मिटाओ अपना मान।
यही दोस्ती की पहचान॥

तृप्यन्ताम्

विधवाएँ बहकाई जायँ।
बरबस यवन बनाई जायँ॥
पर, तुम सोओ चादर तान।
यही दोस्ती की पहचान॥

तृप्यन्ताम्

बालक नित्य चुराये जायँ।
फुसलाये धमकाये जायँ॥

देखो, पर कुछ देहु न ध्यान।
यही दोस्ती की पहचान॥

तृप्यन्ताम्

कट-कट कटे सदा गो-वंश।
उचित नहीं देना पर, दंश॥
सहो मानसिक कष्ट महान।
यही दोस्ती की पहचान॥

तृप्यन्ताम्

भजो भक्ति से 'मुसलिम-लीग'।
अपनाओ आकर 'तवलीग़'॥
तानो शुद्धी की मत तान।
यही दोस्ती की पहचान॥

तृप्यन्ताम्

उर्दू का उत्कर्ष दिखाय।
हिन्दी का दल दर्प दवाय॥
वेद छोड़ कर पढ़ो क़ुरान।
यही दोस्ती की पहचान॥

तृप्यन्ताम्

दलितों को दो और दवाय।
भागें 'धर्मभीरु' घवराय॥
बनें मुसलमाँ या क्रष्टान।
यही दोस्ती की पहचान॥

तृप्यन्ताम्

विधवाओं का करना व्याह।
है हिन्दू को सख़्त गुनाह॥
नष्ट-भ्रष्ट हो ऋषि-सन्तान।
यही दोस्ती की पहचान॥

तृप्यन्ताम्

काँगरेस के कट्टर वीर।
बन हिन्दू को कहो हकीर॥
लुटने दो जन-धन-ईमान।
यही दोस्ती की पहचान॥

तृप्यन्ताम्

करो "खिलाफ़त" जाओ जेल।
संकट सहो बताओ खेल॥
समझो कभी न 'कसरे शान'।
यही दोस्ती की पहचान॥

तृप्यन्ताम्

हत्यामय बर्बर व्यापार।
सह-सह सारे अत्याचार॥
बने रहो बिलकुल नादान।
यही दोस्ती की पहचान॥

तृप्यन्ताम्

होकर तुम बाईस करोड़।
छः करोड़ की करो न होड़॥
दे दो उनको 'सीट' समान।
यही दोस्ती की पहचान॥

तृप्यन्ताम्

हिन्दू जाति रसातल जाय।
पर प्यारा भारत बच जाय॥
हो स्वाधीन जल्द भगवान!
करके धर्म-कर्म क़ुरबान॥

हुक्के की हिस्ट्री

उफ ! सुधारको ने मेरा नाक में दम कर दिया ! जिस सभा में जाइये मेरा विरोध ! जिस सोसाइटी को देखिये मेरी दुश्मनी !! जिस संस्था का निरीक्षण कीजिये मेरी बग़ावत !!! अरे साहब ! मै क्या हुआ लोगो की आँखो का कांटा हो गया ! कोरा वाचनिक विरोध होता सो भी नही, लोगो ने मुझे काया-कष्ट देकर अङ्ग भङ्ग तक कर डाला ! किसी ने मुकुट फोड़ा, किसी ने गरदन पर ईटें बजाईं, कोई दिल पर दुहत्थड़ मार कर वीरता दिखाने लगा और किसी ने फैंफड़े पर पत्थर पटक दिया ! निदान-जिस से जिस तरह बना मेरा वंश-विनाश करने लगा। परन्तु मुझे देखिये, मैं नाना प्रकार के सङ्कट झेलता, मुसीबत ठेलता लोगो के मुंह लगा ही रहा ! भाई क्या कहते हो, मै तो मै कभी घूरे की भी फिरती है। देखते नही, जो लोग एक दिन मुझे मारने को दौड़ते थे आज वे शुद्धी के मैदान मे वैठ कर मेरी परिस्तिश कर रहे हैं।

मेरी कारगुज़ारी ही ऐसी है। औरङ्गजेब की तेज तलवार को जिस काम के करने मे देर लगती थी उसे मै एक 'गुड़गुड़ाहट' मे करा देता हूॅ। शुद्धि-सभा को जितना मुझ पर भरोसा है उतना बेचारे वेद-शास्त्रो पर भी नही। मैने अव तक लाखो विछुड़ो को उनके भाइयों से मिला दिया ! पहले मेरी शक्ल से नफरत की जाती थी. पर, अव दस-दस हजार की सभा के वीच, वड़े-वड़े राजे-महाराजे, साधु-संन्यासियो और पण्डित पुरोहितो की मौजूदगी मे मेरी तूती वोलती है !! मेरी मधुर ध्वनि सुनते ही जनता 'जय-जयकार' करने लगती है। लोग मेरी मृदुल मूर्ति की ओर टकटकी

लगाये देखते रहते है। अगर मै नही तो कुछ भी नहीं और मै हूं, तो सब कुछ। कोई नही पूछता कि वेद क्या कहते है? शास्त्र क्या अलापते है? स्मृति की क्या सम्मति है? पण्डित क्या बखानते हैं? सबकी एक बात—"हुक्का-पानी हुआ कि नहीं?" "हां हो गया?"—"अच्छा तो अब रोटी बेटी होने दो, सगाई चढ़ने दो बारात बढ़ने दो और पण्डित को विवाह पढ़ने दो।"

देखी मेरी शक्ति और परखा मेरा पराक्रम? है मुझ मे कुछ करामात? आधुनिक भारत ने बस दो नवीन आविष्कार किये है, एक मेरा और दूसरा मेरे सौतेला भाई चरखे का? समाज और देश का अगर सुधार होगा तो हम दोनो के द्वारा। देखने मे साधारण पर काम करने मे हम लोग असाधारण है। अगर सन्देह हो तो भारतीय शुद्धि-सभा के महा मन्त्रीजी या कांग्रेस कमेटी के प्रेसीडेण्ट साहब से हमारी कारगुजारी की रिपोर्ट तलब-कर ली जावे।

---

१४४ !!!

अरे क्या पूछते हो–मेरा नाम '१४४' है। मैने बड़ो-बड़ो का मान-मर्दन कर दिया। पुष्प-शय्या पर शयन करने वालो को कारागार की कंकरीली धरती पर सुला दिया। सिंह की तरह गर्जने वाले वक्ताओ के मुँह पर ऐसा मुछीका लगाया कि उनकी बोलती बन्द करदी। जो काम बड़ी-बड़ी शक्तियो से महीनों मे नहीं हुआ उसे मैने मिनटो मे कर दिखाया !! जिस सभा-मण्डप मे, मैं पहुँच गई उसमे बस मै ही मै मटकने लगी। बड़े-बड़े मुफ से मग़ज मार कर मर गये, पर, किसी से मेरा बाल बांका भी न हुआ मै मौम की तरह इतनी मुलायम हूँ कि मजिस्ट्रेट-मदारी चाहे जिस ओर मुझे घुमा सकता है। साथ ही मै वज्र की तरह इतनी कठोर भी हूँ कि जहाँ पञ्जे अड़ा देती हूँ फिर सम्पटपाट किए विना नही टलती।

कहो, खबर है असहयोग आन्दोलन की। पता है 'नानको-आपरेशन मूवमेंट' का !! कैसे करश्मे दिखाये !! क्या गुल खिलाये !! क़ितना कौतुक किया !!! रोज़ यही सुन पड़ती थी—"आज फलाँ लाल बद गये, कल अमुक दास गये, परसो इमके देव बेड़ियाँ खटका देरहे हैं, अतरसो ढिमके दत्त हथकड़ी पहने जा रहे है।" भाई, सच समझना, मेरी बदौलत लोगो में हिम्मत आ गई। जो लोग क़ैद के नाम से कानों पर हाथ रखते थे वे भी मेरी ललकार पर एक बार 'जेल की चिड़िया' बनने को तैयार हो गये। और तो और अबला कहाने वाली स्त्रियाँ भी सबला बन बैठी। ह ह ह ह ह। इन बातो मे मै खूब मशहूर हो गई हूँ। मेरा नाम शैतान की तरह 'शोहरे-ए-आफाक़ हो गया है।। मेरी सर्वतोमुखी गति है।

मै पहले ही मोम की तरह मुलायम और बज्र की तरह कठोर बन चुकी हूॅ। राजनैतिक दंगल से जी ऊब उठा तो अब मेरे मदारी ने मुझे धार्मिक क्षेत्र की नाप करने को भेजा है। 'नगर-कीर्तन' और 'रामलीला' पर मैंने अपना सिक्का जमाया है? इन धूम-धड़ाकों पर अपनी धाक बिठाई है!! है किसी की हिम्मत जो मुझ से मुँह मोड़ कर मैदान मे डटे? मिला कोई जिसने मेरा मान-मर्दन किया! 'ह ह ह ह' मैं क्या हूॅ, शक्ति का कोप और बल का भण्डार हूॅ!

अहा! मेरे नाम मे तो बड़ी ही विचित्रिता है। मै तीन अंको से बनी हूॅ, जिनका योग नौ होता है। संसार का सारा गणित शास्त्र इन ९ अंको मे ही समाप्त हो जाता है। अर्थात् मै इस 'अंकशास्त्र' की पड़दादी हूॅ! या यो कहिये कि जनता से पूजा पाने के लिए 'नवग्रह' स्वरूप हूँ! मै एक हूॅ और चार-चार भी, अर्थात् संसार को उपदेश देती हूँ कि एक ईश्वर पर विश्वास रखते हुए 'काम', 'क्रोध', 'मद', 'लोभ' से बचो और 'धर्म', 'अर्थ', 'काम', 'मोक्ष' की प्राप्ति मे प्रयत्नवान हो जाओ! 'पोलिटिकल पार्टी' व्यर्थ ही मुझ से भयभीत होती है—मेरा १ उसे एकता का बोध कराता है, ४ 'साम', 'दाम', 'दण्ड', 'भेद' बताता है, और दूसरा ४ चरखा, करघा, खद्दर एवम् अछूतोद्धार की ओर ले जाता है। समझे! मै इतनी विशाल और ऐसी व्यापक हूँ!! मै लोगो से मैत्री करने आती हूॅ, लोग मुझे देखकर बिदकते हैं—कोसते हैं!! इसमे मेरा क्या दोष? मैं क्या जानूॅ? मेरा मदारी जानें जो मेरी डोरी इधर से उधर और उधर से इधर करता रहता है—

'वाकी माया मोहि नचावे,
मैं कठपुतली वह डोरी है-
दईमारे भारत होरी है॥'

कवि-सम्मेलन की 'धड़ाकधूँ'

रात के ठीक १२ बजे, विनोद वाटिका के बाड़े मे कविसम्मेलन का कार्य प्रारम्भ हुआ। भारतवर्ष के प्रायः सभी सुप्रसिद्ध हिन्दी कवि मौजूद थे। जो लोग किसी विशेष कारण से न आ सके थे उन्होंने अपनी कविताएँ भेजकर ही सम्मेलन से सहानुभूति प्रकट की थी। सम्मेलन के सभापति निर्वाचन का प्रस्ताव होने पर मि० विनोदानन्दजी सबसे पहले बोल उठे—"मेरी राय मे, मैं ही इस पद के लिए अधिक उपयुक्त हूँ, क्योकि न तो मैने पिंगल पढ़ा है, और न किसी छन्द-शास्त्र का अनुशीलन किया है। न अलंकार जानता हूँ और न रसों का ही आस्वादन कर पाया है। पर, मेरी शायरी, ओह! ग़ज़ब की होती है, सुनते ही लोगो के दिमाग़ चक्कर काटने लगते है। तबीअत उबल उठती है, दिल दहक जाता है। मैं समझता हूँ, मेरी ऐसी जौलानी देख कर ही किसी ने यह बात कही है—"Poets are born not made" अर्थात् शायर लोग पैदा होते है, बनाये नही जाते। उठती हुई तबीअत पर किताबों का गट्ठर लादना भारी भूल है, मैंने अपने ऊपर यह जुल्म नही किया। उम्मेद है कि आप लोगो ने मेरा मफहूम समझ लिया होगा और आप मेरे लिए ही राय देंगे।" कवि समाज विनोदानन्द की बातें सुनकर दंग रह गया और सर्व सम्मति से आप ही सम्मेलन के सभापति बनाए गये।

आपने सभापति का आसन ग्रहण करते हुए काव्य सम्बन्धी जो बातें कही वे इतनी स्थूल थीं कि पाठको की सूक्ष्म समझ मे नही घुस सकती, इसलिए उनका यहाँ उल्लेख न किया जायगा।

ख़ैर, सभापतिजी की आज्ञा से कवि कुल कंकड श्रीयुत चटपटा-नन्दजी ने अपना हृदय-फाडक और लताड-झाड़क आवाज मे कविता कपोतनी के पंख उखाडने शुरू किये—

"पापी पेट भरन के कारन दर-दर दुरे फिरा करते हो।
कुत्तो की सी पूँछ हिला कर नाक ज़मीन घिसा करते हो॥
पा करके फिर वेतन थोड़ा हाथ से हाथ मला करते हो।
कालिज डिगरी पाय हाय! जब सरविस खोज किया करते हो॥

× × × × × ×

सादा कपड़े पहिन ओढ़ कर ऑफ़िस जाने में डरते हो।
गाढ़े की टोपी से नफ़रत सिर पर हैट धरे फिरते हो॥

× × × × × ×

सनद सार्टीफ़िकट हाथ में, सेवा करने को फिरते हो।
ख़ाकसार ख़ादिम बन करके अर्ज़ी पेश किया करते हो॥
सौ-सौ बार सलाम झुका कर मुँह की ओर तका करते हो।
कालिज डिगरी पाय हाय! जब सर...... .. . .

अभी चटपटानन्दजी अपनी कविता को समाप्त भी न कर पाये थे कि झट श्री झटझटानन्दजी दहाडने लगे—"बैठो-बैठो, तुमने कविता के कण्ठ पर कुठार चला दिया! न अनुप्रास का पता और न छन्द की गति का ध्यान! 'सरविस' की सनक मे सबको 'साधुवाद' कह दिया! बैठो-बैठो तुम्हारी शायरी से शुअरा का कलेजा कांपने लगा है।'

सभा में गोलमाल होता देख कर मिस्टर प्रेसीडेण्ट "ऑर्डर प्लीज"-"ऑर्डर प्लीज़" का प्रलाप करते हुए बोले—'हज़रात! अब आप लोग 'शुतर बेमुहाल' की तरह इधर-उधर न दौड़ें। मैं एक 'शमस्या' देता हूँ, सब साहबान इतमीनान के साथ उसकी पूर्ति करें और एक के बाद दूसरे साहब सुनाते चले।'

समस्या—

"नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ।"

कम्बख्त कवि—

हो जावें हम भारतवासी सब के सब बरबाद ।
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ॥

कठोर कवि—

विधवा-गाय-अनाथों की हॉ, नेक न आवै याद ।
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ॥

कुतर्की कवि—

सन्ध्या, हवन, वेद की बातें समझें सब बकवाद ।
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ॥

काला कवि—

ब्लैक वारनिश सी बौडी पर कोट-हैट लें लाद ।
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ॥

कट्टर कवि—

भारत पड़े भाड़ में चाहे, घटे न पद-मर्याद ।
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ॥

कोपरेटर कवि—

रहें गुलामी के गड्ढे में करें न दाद-फ़िराद ।
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ॥

कर्मवीर कवि—

कोरी बात बनाकर कर दें भारत को आजाद ।
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ॥

क्रिश्चियन कवि—

ब्लैकवृन्द को मिलै हमारे ईसा का सुप्रसाद ।
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ॥

कक्कड़ कवि—

हलुआ खाकर खीर सपोटूँ तऊ न आवे स्वाद ।
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ॥

कृपण कवि—

खन्ना से उपहार खनन की बीत न जावे म्याद ।
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ॥

कौरस्पोंडेण्ट कवि—

भेजूँ छाँट-छाँट छपने को नित्य अशुभ संवाद ।
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ॥

करीम कवि—

ज़रा-ज़रा से वाक़आत पर बरपा करें फ़िसाद ।
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ॥

कारपोरेशन कवि—

काम न करना पड़े शहर में बढ़े सड़ाँयद-खाद ।
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ॥

कौमर्स कवि—

खद्दर और स्वदेशीपन का चढ़े न अब उन्माद ।
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ॥

कण्टक कवि—

भंगी, डोम, चमार कौम का सुने न आरत नाद ।
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ॥

कुशासन कवि—

भारत के सब स्वत्व छीन कर करते रहें प्रमाद ।
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ॥

हवाई कवि-सम्मेलन

[अब की बार लोगों के दिमाग़ मे फिर कवि-सम्मेलन का ख़ब्त सवार हुआ, बहुत आन्दोलन मचाया और अन्त में सर्व सम्मति से निश्चित हुआ कि इस वर्ष सम्मेलन, जमीन और आसमान के बीचो-बीच करना चाहिये। बस, इस काम के लिए एक जय्यद ज़ेपलेन (हवाई जहाज़) मंगाया गया, जिसमें बैठ कर कवि-समाज आकाश की ओर उड़ा। वहाँ से बिना तार के तार द्वारा जो समाचार उपलब्ध हुए हैं, वे नीचे दिये जाते हैं—सम्पादक।]

अहा! वायुयान मे बड़ा आनन्द आ रहा है। यहाँ आकर कवि लोगों के मस्तिष्क में एक अद्भुत स्फूर्ति पैदा हो गई है। लोगों के दहकते दिमाग़ से शायरी के शौले बड़ी तेज़ी से फूट रहे हैं। नाम कहाँ तक गिनाऊँ, प्रसिद्ध-प्रसिद्ध सभी कवि मौजूद हैं। आज रात को पौने दो बजे से कवि-सम्मेलन की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। समस्या थी—"आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना"। हिन्दी समस्या के स्थान पर इस उर्दू 'तरह' को सुन कर कविसमाज बेतरह नाराज हुआ! घनघोर वाग्युद्ध होने लगा, ख़ूब लनतरानियाँ फिकी! घूँसे-मुक्को तक की नौबत आ गई! लोग वायुयान से असहयोग तक करने को तैयार हो गये! पर, सम्मेलन के प्रधान श्रीयुत काव्य-कण्टकजी ने अपनी अपूर्व योग्यता द्वारा सब का समाधान कर दिया और उक्त उर्दू समस्या पर ही पूर्तियाँ पढ़ने की आज्ञा दी। प्रधान की 'रूलिङ्ग' सबको माननी पड़ी और कवियो ने एक एक करके पूर्तियाँ सुनानी शुरू कीं, कुछ पूर्तियाँ इस प्रकार थी—

समस्या—

"आता है याद हमको गुज़रा हुआ जमाना।"

पूर्तियाँ—

संवाददाता कवि—

शहरों में घूम-फिर कर ख़बरों को खोज लाना।
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना॥

पाचक कवि—

पूरी-कचौरी करना या खीर का पकाना।
आता है याद हमको गुज़रा हुआ जमाना॥

भक्त कवि—

चौकी पै पाठ करना और बार-बार न्हाना।
आता है याद हमको गुजरा हुआ ज़माना॥

पतित कवि—

वचनों को भंग करना लुटिया सदा डुबाना।
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना॥

लेखक कवि—

ले लेख दूसरों के निज नाम से छुपाना।
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना॥

भुक्खड कवि—

बेकूत पेट भरना दस बार दस्त जाना।
आता है याद हमको गुजरा हुआ ज़माना॥

'डायर' कवि—

निर्दोष भाइयों पर गन-गोलियाँ चलाना।
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना॥

मियाँ कवि—

बहका के हिन्दुओं को 'कलमा' उन्हें पढ़ाना।
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना॥

निकम्मा कवि—

करना न काम कुछ भी पर, ख़ूब बड़बड़ाना।
आता है याद हमको गुजरा हुआ ज़माना॥

स्वार्थी कवि—

लोगों से ठग के खाना और रोज़ गुरगुराना।
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना॥

कौंसिल कवि—

बन कर प्रजा का प्रतिनिधि कुछ भी न कर दिखाना।
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना॥

म्युनिसिपल कवि—

करके असावधानी सब शहर को सड़ाना।
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना॥

करुण कवि—

निज देश-दुर्दशा पर आँसू सदा बहाना।
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना॥

गायक कवि—

स्वरहीन गीत गाना, बेताल 'गत' बजाना।
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना॥

ज़मींदार कवि—

आसामियों को दुख दे 'कर-भेज' का बढ़ाना।
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना॥

वकील कवि—

अभियोग लड़-लडा कर शुकराना खूब पाना।
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना॥

वैद्य कवि—

अल्पज्ञता के कारण रोगी का दम घुटाना।
आता है याद हमको गुजरा हुआ ज़माना॥

कवियो की समस्या-पूर्तियो पर एकदम 'वाह-वाह' और 'मरहबा मरहबा' की आवाज आने लगी। कितने ही मन चले तो मारे प्रसन्नता के पेट पीटने लगे। बडा कोलाहल हुआ। जहाज का कप्तान समझा कि कोई आफत आई! दंगा हो गया!! चट उसने 'जेपलेन' की गति जमीन की ओर की। थोड़ी देर में ही विमान नीचे आगया। प्रेसीडेण्ट ने कहा—"लो, अब आप लोग उतरें और अपनी इच्छापूर्ण करें। आप लोगों ने कविता तो कुछ की नहीं, अपनी-अपनी ख्वाहिश का इज़हार ज़रूर किया है। अच्छा, अब आप आजाद हैं, जिसका जी जिधर चाहे उधर वह जा सकता है। सम्मेलन बरख़ास्त किया जाता है।"

'चपरपंच' का चीत्कार

१

सुनो, हिन्दुओ! बात मेरी सुनो।
कलेजा पकड़ कर सिरों को धुनो॥
ग़ज़ब हो रहा है निहारो ज़रा।
धरम को न इस भाँति मारो ज़रा॥

२

न मर्याद का ध्यान तुमको रहा।
न मानो चपरपञ्च का कुछ कहा॥
बड़े उग्र, उद्दण्ड तुम हो रहे।
बड़प्पन बड़ों का वृथा खो रहे॥

३

अगर जाति का चाहते हो भला।
दबोचो सदा संगठन का गला॥
न जीती रहे राँड 'शुद्धी सभा'।
बुझादो, अरे! एकता की प्रभा॥

४

अछूतादि का नाम भी तो न लो।
गिरों में लपक लात दो और दो॥
अगर वे विधर्मी बनें तो बनें।
हमारी सदा चैन ही में छनें॥

५

कभी भूल कर भी न आगे बढ़ो।
गढ़े से निकलकर न गिरि पै चढ़ो॥

कड़ी 'कूप-मण्डूकता' धारिये ।
छुआछूत का जाल विस्तारिये ॥

६

कलाकन्द पूड़ी उड़ाया करो ।
मगर, दाल-रोटी न खाया करो ॥
यही शुद्धता का महा मर्म है ।
सुनो, पण्डितो ! बस परम धर्म है ॥

७

नहीं हानि यदि गात-गर्दन हिले ।
करो व्याह यदि बाल-बाला मिले ॥
न छोड़ो, अरे ! थैलियाँ खोल दो ।
वधू को वरो स्वर्ण से तोल दो ॥

८

दुखी बाल-विधवा विगोती रहें ।
बिलखती रहें, प्राण खोती रहें ॥
मगर व्याह उनका रचाना नहीं ।
सुकुल को कलङ्की बनाना नहीं ॥

९

पुजापा चढ़ाओ मियाँ-मीर को ।
दुशाला उढ़ाओ पड़े पीर को ॥
कबर की करामात को मान दो ।
कुतर्की बकें तो न कुछ ध्यान दो ॥

१०

घरों में लडो और बाहर पिटो ।
'क्षमा' को न छोड़ो मरो या मिटो ॥
न बलवान बनना, अकड़ना कभी ।
न तलवार, बरछी पकड़ना कभी ॥

११

लुटें देवियाँ पास जाना नही।
झुकें भाड़ में, पर, बचाना नहीं॥
दिखाना न बल की कहीं बानगी।
सुरक्षित रहे मर्द ! 'मर्दानगी'॥

१२

रक़म दूसरों की गटकते रहो।
सटासट्ट माला सटकते रहो॥
बनो धर्म के धाम संसार में।
अड़ाओ सदा टाँग उपकार में॥

१३

पकड़ गाय दो-चार चन्दा करो।
न पानी पिलाओ न चारा धरो॥
स्वयम् मौज मारो मज़े में रहो।
भजो भोर गोपाल! 'शिव! शिव!!' कहो॥

१४

न भूलो कभी 'ब्रादरी' को भला।
इसी में छिपी विश्व की है कला॥
किसी पंच का कोप होने न दो।
कभी प्रेम का बीज बोने न दो॥

१५

भरो पाप की पोट डरना नही।
कभी पुण्य का काम करना नही॥
झुकाओ, हमें थैलियाँ प्रेम से।
रहोगे हमेशा कुशल-क्षेम से॥

पदवी-पतुरिया

१

'गोरे गुरुगण की ख़ातिर में,
खरच करूँगा दाम।
दमकेगा दुमदार सितारा,
बनकर जुगनू नाम ॥
ख़िताबों को फटकारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा ॥'

२

'जग में जीवनभर भोगूँगा,
मनमाने सुखभोग।
परम रङ्क महँगी के मारे,
प्राण तजें लघु लोग ॥
उन्हें तो भी न निहारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।'

भाई, भिड्डनमिश्र!

लो, काम बन गया! बरसो की मिन्नत-खुशामद और मेल-मुरव्वत का नतीजा निकल आया—'अमित काल में कीन्ह मजूरी। आज दीन्ह विधि सब भरपूरी ॥' जिसके लिए हम आठ पहर चौसठ घड़ी राम-रटना लगाये रहते थे, अन्त मे वह 'पदवी-पतुरिया' प्राप्त हो ही गई! बलिहारी है हमारी हिम्मत को, और बधाई है हमारी हम को! मगर भाई, दुनिया बड़ी बेढंगी है, उससे कृतज्ञता कर्पूर हुई चली जा रही है। कितने ही लफंगे लनतरानियाँ हाँकते हुए हम से कहते हैं कि—'पदवी-प्रेयसी को वापिस करदो।' शिव! शिव!! जिस ख़िताब-ख़ातून की ख़ातिर, हुजूर की ख़िदमत मे हाजिर होते-होते हड्डियो में हड़कन होने

लगी, उसे वापिस करदे–घर आई लक्ष्मी को फेर दे ! ह ह ह ह !!!
लोगों को जरा शऊर नहीं है।

जिन साहबों की ठोकरो से ठुकराये जाने के लिए लोग लालायित रहते हैं, जिन श्रीमानो के श्रीमुख से ऊल-जलूल सुनना सौभाग्य समझा जाता है, जिन तिल्लीतोड़ो की तिरछी त्योरी कृपाकटाक्ष के नाम से पुकारी जाती है, उनकी प्रदत्त प्रशस्त पदवियाँ त्याग दी जायँ ! क्या खूब ! लोग नहीं जानते कि ये देव-दुर्लभ उपाधियाँ कितनी तेज़ तपश्चर्या और कैसे प्रचुर परिश्रम से प्राप्त होती हैं। अरे भाई ! जब अंगरेजो की अर्चना और भाइयो को भर्त्सना करते-करते जीभ पर छाले और हलक में फाले पड़ जाते हैं तब कही यह खुश क़िस्मती हासिल होती है। डालियाँ लगाते और गालियाँ खाते जब पूरी 'सहिष्णुता' आ जाती है तब यह सुदिन दिखाई देता है। क्या तुम्हें नहीं मालूम कि 'पदवी-पुतरिया' की प्राप्ति के लिये सभा-सोसाइटियो मे जाना तो दर-किनार, मैं उनके समाचार पढ़ कर कुल्ला और सुनकर कान साफ किया करता हूँ। 'वंदेमातरम्' छूकर, भयङ्कर शीतकाल मे भी कई बार हाथ धोने पड़ते है। राजनीति के कीटाणु नष्ट करने के लिए, छै-छै बार 'फनायल' छिड़कवाई जाती है। असहयोगियो की परछाईं पड़ने से तीन-तीन बार स्नान करना पड़ता है। सार्व-जनिक संस्थाओ को चन्दा देना भयङ्कर पाप समझता हूँ। असहयोग आन्दोलन मे भाग लेकर, देश से अनुराग रखना बिलकुल बिसार दिया है। ईसाइयो को अपनाने, अपने साहबो को रिझाने और हुजूरो को मनाने मे ही मेरे धन का सदैव सदुप-योग हुआ करता है। मतलब यह है कि जब मैंने साहिबों को सर्वस्व और अपना ध्येय बना लिया तब कहीं पूरी प्रार्थना और ऊँची उपासना के पश्चात् 'पदवी-पतुरिया' के सुन्दर सरूप की झाँकी हुई है।

जो हो अब हम 'पदवी पतुरिया' के प्राण प्यारे प्राणनाथ हैं। सब जगह हमारा सम्मान होगा। दरबार मे सबसे आगे नही तो पीछे जरूर कुर्सी मिलेगी। हॉ मे हॉ मिलायेगे और आनन्द पायेगे। साहबो की सेवा करेगे और मेवा खायेगे। देश को दुरदुरायेंगे और सारे झगड़ो से छूट जायेगे। हम होगे और हमारा नाम, तुम जानो और तुम्हारा काम! एक बात और की जायगी अर्थात् जहाँ तक मुमकिन होगा, इन हिन्दुस्तानियो से बाते कम करेगे। ये अजीब जन्तु न मौका देखते है न महल। मन में आता है तभी देश-सुधार के भौड़े राग अलापने लगते हैं। एक गवैया रात को बड़ी बेहूदी राग रागनी रेक रहा था, मेरी नीद उचट गई और उसकी दो एक कड़ी मुझे अब तक याद है—

खुशामद ही से आमद है।
बड़ी इसलिए खुशामद है॥
एक दिन राजाजी उठ बोले बैगन बहुत बुरा है।
मैंने भी कह दिया इसी से बेगुन नाम पड़ा है॥
खुशामद ही से आमद है।
बड़ी इसलिए खुशामद है॥
दूजे दिन हुजूर कह बैठे, बैगन खूब खरा है।
मैंने भी झट कहा, इसी से उस पै ताज धरा है॥
खुशामद ही से आमद है।
बड़ी इसलिए खुशामद है॥
यदि राजाजी दिवस कहे तो, दिनकर हम दमका दे।
जो वे रात बतावें तो फिर, चन्दा भी चमका दें॥
खुशामद ही से आमद है।
बड़ो इसलिए खुशामद है॥

पशु-पक्षियों की 'पार्लमेंट'

निर्जन जंगल के विशाल मैदान मे, आधी रात के आध घन्टे बाद पशु-पक्षियो की एक महती सभा बैठी। जिसमे सब प्रकार के पशु-पक्षियो के प्रतिनिधि शामिल थे। दर्शक रूप से भी बहुत से श्राता विद्यमान थे। सभापति का आसन श्रीमान् वीरवर केसरीसिहजी ने सुशोभित किया था। जिस समय सभापति महाशय, मिस्टर चीताराम, पं० वघर्रामल और लाला लकड़ वग्घामल के साथ, सभामण्डप मे पधारे, उस समय प्रतिनिधियों के हर्ष का ठिकाना न रहा। सबने अपनी-अपनी भाषा मे उनका एक साथ स्वागत किया। रेंगने, भोकने, चीखने, चिघाड़ने, रँभाने, बलबलाने, मिनमिनाने, चहचहाने आदि की सम्मिलित तुमुलध्वनि ने युगान्तर उपस्थित कर दिया। सब से पहले श्रीमती लोमड़ी, श्रीमती बिल्ली और श्रीमती कुक्कुरीदेवी ने स्वागत-गान गाया। फिर मिस्टर भेड़ियाराम खड़े हुए और आपने आध घन्टे में सारा स्वागत-भाषण पढ़ डाला। सभापति महोदय ने उपस्थित प्रतिनिधियो को धन्यवाद देते हुए कहा—

"भाइयो, आज की सभा का उद्देश्य हज़रत इन्सान से असहयोग करना है। इस दुष्ट के द्वारा, हम लोगो को जो घोर कष्ट पहुँचाया जाता है, उससे हम बहुत दुःखी है। आत्म-रक्षा के उपायों पर विचार न करना कायरता है। मैं अपना भाषण पीछे दूंगा; पहले आप लोग निर्भय और निःसंकोच होकर अपने विचार प्रकट करें। देखिये, सभा मे गड़बड़ी न होने पावे। विविध मत-सम्प्रदायो और सूरत-शकलों के प्रतिनिधियो की यह पहली 'पार्लमेंट' है। अतएव एक को दूसरे के भावो का पूरा ध्यान

रखना चाहिये। एक बात ध्यान मे और रहे, हम लोग आपस मे भले ही मतभेद रक्खें, पर, इन्सान के मुकाबिले मे सब को एक बन जाना चाहिये। अच्छा, अब श्रीमती गायदेवी अपनी आपबीती करेगी।"

गौरवशीला गोमाता

श्रीमती गोमाताजी ने पूंछ हिला कर रँभाते हुए कहा—'भाइयो, कैसे दुःख की बात है, मनुष्य मुझे पकड कर अपने घरों मे बाँध लेते है। मेरे आगे कूड़ा-करकट फेक कर सारा दूध गटक जाते है, मेरी प्रिय सन्तान देखती ही रह जाती है। सब जानते है कि माता का दूध उसके बच्चो के लिए होता है, पर, मेरा दूध दूसरो के लिए है। वुड्ढी होने पर मैं 'ब्राह्मण' को 'पुण्य' कर दी जाती हूँ। जहाँ से मेरा सीधा "स्लाटर हाउस" को चालान हो जाता है। मेरे पुत्र शीत-घाम की कुछ भी परवाह न कर, घोर पुरुपार्थ करने के बाद कही रूखा-सूखा भूसा पाते है। इस घोर अन्याय का नाम मनुष्यों ने "परोपकार" और "गोरक्षा" रख छोडा है। बाज आई मैं इस 'परोपकार' से। मेरे खाने के लिए परमात्मा ने बहुत दिया है, मैं नही चाहती कि परोकार के 'पोटले' ये इन्सान मेरी जाति पर और अधिक अन्याय करें।

इस वक्तव्य का समर्थन भाषणपटु भैंस और विवेकशीला बकरी ने भी बड़े मर्मस्पर्शी शब्दों मे किया और कहा—'दरअसल हमारे साथ घोर अन्याय होता है।'

श्रीगर्दभदेवजी

महाशयो, मेरी कथा न पूछिये, मेरे जीवन से तो मौत ही अच्छी है। रात दिन काम करना, पीठ पर डण्डे खाना, भूख से घबराना, बस, यही मेरी क़िस्मत मे बदा है! इतना घोर पुरुषार्थ

करने पर भी हज़रत इन्सान मुझे बेवकूफ ही कहकर पुकारता है, कान पकड़ कर बुलाता और डण्डे मार कर चलाता है। हे सभापति! मुझे इस घोर दुःख से बचाइये, मै मर जाऊँगा, मुझे मनुष्य की यह 'परोपकारिता' नही चाहिये। सच समझिये, अगर मै इतना परिश्रम, व्याकरण पढ़ने मे करता तो, आज महामहोपाध्याय हो जाता, तप मे सहिष्णुता दिखाता तो महात्मा बन जाता। परन्तु सज्जनो, मेरा तो लोक बना न परलोक! इतना कह कर श्रीगर्दभदेवजी का जी भर आया और आप बीच ही में बैठ गये!

कुँवर कुत्ताकुमारजी

सज्जनो, आप जानते हैं, मै भाई भेड़िया का चचाज़ाद भाई हूँ। परन्तु इन्सान के कुसंग ने मुझे परममुखापेक्षी और चापलूस बना दिया है। एक टुकड़े की खातिर मुझे उसकी अजहद खुशामद करनी पड़ती है। यहाँ तक कि मै अपने सगोत्री भाइयों से भी प्रेमपूर्वक वार्त्तालाप नही करता, सदैव द्वेष दर्शाता रहता हूँ। पर, तो भी मुझे पेट भर रोटी नहीं मिलती! हमारे कितने ही भाइयो ने, स्वामि-भक्ति के कारण इन्सान के लिए—टुकड़ो और केवल टुकड़ो के लिए—अपने अमूल्य शरीर बलिदान कर दिये, परन्तु इस खुदगरज कौम को हमारे हाल पर तनिक भी तरस न आया! उसने मेरे विरुद्ध नाना प्रकार की किम्वदन्तियाँ गढ़ डालीं!! मेरा घोर अपमान किया!!! चाकरी को निन्दापूर्वक 'श्वानवृत्ति' के नाम से पुकारा, और बुरी मौत को 'कुत्ते की मौत' कहा! क्या इसी का नाम कृतज्ञता है? क्या सच्ची सेवा का यही प्रशंसनीय फल है कि हम तो इन्सान के लिए प्राण तक देदें, अपने कुनवे को भी त्याग दे, परन्तु हज़रत इन्सान रोटी के टुकड़े तक से हमें महरूम रक्खें, और कभी कुछ खिलादें तो इस

'उपकार' पर फूले न समावे । मै ऐसे नाशुकरे इन्सान पर लानत का प्रस्ताव पास करने की प्रार्थना करता हूँ ।

भाई भेड़ियामल

उदार भाइयो, मुझे अपने चचेरे भाई कुत्ते की कष्ट-कथा सुन कर घोर दुःख हुआ । वास्तव मे, अपने जातीय गौरव को भूल कर, भाइयो का साथ न देने वालो की, ऐसी ही दुर्गति होती है । निस्सन्देह कुत्ता हमारा भाई है, पर वह टुकडो की खातिर दूसरी क़ौम का गुलाम बन गया !

[नोट—यहाँ माननीय सभापतिजी ने भाई भेड़ियामल को यह कह कर रोक दिया—'तुम्हे अपनी शिकायते पेश करनी चाहिए थीं, दूसरो के सम्बन्ध मे, आक्षेपपूर्वक कुछ कहने या उनकी समालोचना करने का अधिकार तुम्हे नही दिया गया ।' यह सुन कर भाई भेड़ियामल उदास होकर बैठ गये । फिर हज़रत हाथीखाँ को बोलने की आज्ञा मिली ।]

हज़रत हाथीखां

सज्जनो, हमने भी कम कारनामे नही दिखाये, पर अब नयी रौशनी वाले इन्सान द्वारा हमारा जो निरादर है, उसे हम कह नही सकते ! भला कुछ ठिकाना है ! क्या इन्सान को अक्ल इसलिए मिली है कि वह 'अकुश' के रूप मे, हमारे भारी भाल पर आक्रमण करता रहे । इतने बड़े हम गजराजो के लिए यह शर्म की बात है ! इस लोकतन्त्र-शासन के युग में इस प्रकार अपमानित होना कोई पसन्द न करेगा। शिकार के समय हम अपनी छाती अडा देते है, पर अपने ऊपर बैठे हुए इन्सान तक कोई चोट नही आने देते । गहरी नदी में खुद घुस जाते है, पर अपने शासक सवार पर, छींटे भी नहीं पडने देते। जरा पुराना इति-

हास उठा कर तो पढ़ो, हमारे कैसे-कैसे कारनामे है। आज कल के राजाओ ने हमे जनाना वना दिया ! हम भी देशी राजाओ की तरह, बस, कभी-कभी जुलूसो की शोभा बढाने वाले दिखावटी समझे जाने लगे ! हमारा सब शौर्य नष्ट किया जा रहा है। इतना बडा महायुद्ध हो गया पर हमारा उसमे नाम तक नहीं ! इससे अधिक हमारा अपमान और क्या होगा ? अगर मेरा बस चले तो, मै इस 'अक़्ल के पुतले' इन्सान की सारी समझ ठीक कर दूँ। भाइयो, साहस करो, अगर आप सब लोग लीद भी करदे तब भी उससे सारा मनुष्य-मण्डल दब सकता है। निरंकुश होते हुए भी आप एक अंकुश के इशारे नाच रहे है, यह दुःख की बात है।

ठा० घोड़ासिंह

भाइयो और भाभियो, हमारी जाति ने इन्सान का अपूर्व हित किया है। जिस समय न 'मोटर' थी न 'साइकिल' और न हवाई जहाज़ थे, उस समय हम ही इन्सान को सर्वत्र घुमाते फिरते थे। हमारी क़दर भी बहुत होती थी, परन्तु जब से ये रांड 'पोपो' चली है, तब से हमारी बहुत बेक़दरी होगई है। जिन अस्तबलो मे पहले हम हर्ष से हिनहिनाया करते थे, आज उनमे 'पेट्रोलियम' की दुर्गन्ध आती है। ज्यो ही मनुष्य 'मोटरकार' ख़रीदने योग्य होता है त्योही वह उसे खरीद कर हमे जवाब दे देता है ! यह संक्रामक रोग बराबर बढ़ रहा है। इसमे कोई सन्देह नही कि थोड़े ही दिनो मे हमारी कोई बात भी न पूछेगा, हम लोग 'किराये के टट्टू' से अधिक अपनी पोज़ीशन न रख सकेगे। आप जानते है, 'टट्टू' नामधारी हमारे लघु भ्राताओ की कैसी दुर्गति है ? उनसे बोझ ढुलवाया जाता है, कूडा उठवाया जाता है, पाख़ाना फिकवाया जाता है, इक्को मे जोत-जोत कर उनके कमर-कन्धो पर ज़ख्म कर दिये जाते है। भले ही मक्खियाँ भिनभिनाती रहे, पर, हज़रत इन्सान को इससे क्या ? क्या यह हमारे उपकारो के प्रति-

घोर कृतघ्नता नही है ? क्या उदारचेता वीर-शिरोमणि 'चेतक' के कुल की यह दुर्दशा होनी चाहिये ? भाइयो, भावी आपत्ति का अभीसे इलाज करो ।

चौधरी उष्ट्रसिंह

भाइयो, क्या कहे इन्सान का बोझ ढोते ढोते मरे जाते हैं; गाड़ियाॅ खीचते-खीचते अक्ल हैरान है । जिस मरुभूमि मे, हमारे प्रतिनिधि भाइयो मे से कोई घूमना पसन्द न करेगा, उसमे हमे भभकती भूभल पर चलना पड़ता है । अगर वहाॅ हम न हों तो, इन्सान की सारी अक्ल ठिकाने आजाय । परन्तु तो भी हमारे चारे का कोई प्रबन्ध नही ! स्वयम् पत्ती तोड़ना और पेट भरना । काम तो लिया जाय पर खाना न दिया जाय, यह कहाॅ का इन्साफ है ? हमे मनुष्य की दयालुता नही चाहिये, हम तो उसके आश्रय के विना ही अच्छे है ।

इसके बाद सभापति श्री केसरीसिंहजी ने कहा—'अब दूसरे वर्ग के प्रतिनिधि बोलेगे । पहिले पक्षियो की 'स्पीच' होगी फिर बिल-वासियो को अवसर दिया जायगा ।'

मि० तोताराम

सज्जनो, इन्सान कहता है कि, मैं प्यार का पुतला हूॅ, गुणो का ग्राहक हूॅ । परन्तु यह सब उसका ढोंग है । आप जानते है, मेरी जाति के लोग बातून ज्यादा होते हैं, खूब मीठी-मीठी बातें बनाते हैं । बस, इसीलिए हज़रत इन्सान ने अपने कन-रसियापन के कारण, 'अहिसा' के नाम पर, हमे पिंजड़े मे बन्द करना शुरू कर दिया ! देखिये, मेरे भाइयो का पिंजरबद्ध बन कर सारा जीवन नष्ट हो गया ! वे नही जानते कि स्वतन्त्र वायुमंडल में सांस लेना कैसा होता है ? हमारा स्वातन्त्र्य और स्वास्थ्य नष्ट

करके मनुष्य कहता है—"मैंने पक्षियों की रक्षा की है! उनको दाना खिलाया और बचाया है!! मैं परोपकार का पुँज और अहिंसा का अवतार हूँ!!!" परन्तु भाइयो, लानत है इस "परोपकार" पर जो हमे नष्ट-भ्रष्ट करके किया जाता है? परमात्मा जमीन पर रेंगने वाली चीटी को भी खाना देता है तो क्या हम व्योम-विहारी लोग भूखो मर जायंगे। हम खुदग़रज इन्सान की ऐसी बातो से बहुत तंग है।

श्रीमती मैना देवीजी ने इस व्याख्यान का समर्थन किया। और भी कई पक्षियो ने बोलने को पङ्ख फड़फड़ाये परन्तु सभापतिजी ने उन्हे यह कह कर रोक दिया कि 'समय थोड़ा है, सुबह होने वाली है, अत. अब बिल-वासी लोग कुछ कहे।'

पं० चुहियाचरणजी

सज्जनो, मुझे अपनी जाति की दुर्दशा देखकर बड़ा दुःख है। आप जानते है कि प्रथम तो हमारे छोटे से शरीर पर पृथुलतुन्द श्री गणेशजी को सवार कर देवताओ ने घोर अन्याय किया है। ख़ैर, उनकी बात भी जाने दीजिये। ये अहिंसाभिमानी मनुष्य हमारे नाश का नित नया उपाय सोचते रहते है। कभी पिंजड़ो मे पकड़ कर हमारा नाश करते है और कभी हमारे घरो मे ज़हर की गोलियाँ पटकते है, जिससे हम मर जायँ। "अशरफ़-उल मखलूक़ात" इन्सान की इस हिमाकत से, अब तक हमारे हज़ारो-लाखो भाई, अपनी ऐहिक लीला समाप्त कर, परलोक वासी बन चुके है! ये भलेमानस यह नहीं समझते कि 'प्लेग' आने की सब से प्रथम सूचना हम अपने शरीरो को बलि-वेदी पर चढा कर देते हैं। हमारी इस सूचना से जो लोग प्लेग-प्रभावित स्थान को छोड़ देते हैं, वे बच जाते हैं। इस उपकार का बदला हमे मिलता है—'सर्वनाश'! बलिहारी इस इन्सानियत की! और देखिये, आज

चारो ओर 'सुधार-सुधार' और 'उन्नति-उन्नति' का ढोल पिट रहा है, परन्तु कोई यह नही सोचता कि इन तरक्कियो के तरानो का 'श्रीगणेश' कहाँ से हुआ। भाइयो, बताइये यदि हम शिवरात्रि को, टकारा के एक शिवालय की शिवमूर्ति पर, चावल चबा कर, मूलशंकर को उपदेश न देते तो, ऋषि दयानन्द कहाँ से आते, और भारतोद्धार कौन करता ? इन सब उपकारो का बदला इन्सान की ओर से मिलता है—'सर्वनाश' ? कैसे दुःख और कितने परिताप की बात है।

बाचाल बन्दर और बीबी बिल्ली

दोनो ने एक स्वर से कहा कि हमारी राय मे, हमारे पूर्व वक्ताओ ने हजरत इन्सान पर झूठे इलजाम लगाये है। हमे देखिये, हम स्वतन्त्रता पूर्वक चरते-विचरते हैं, और मनुष्य से खूब छीन-झपट कर खाते हैं, परन्तु हमारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। बिल्ली ने कहा—'मैं तो घरो के कौने-कौने मे घुस जाती हूँ और खूब मौज उड़ाती हूँ।' बन्दर बोला—'हनुमान बन कर गुड़धानी खाना और गुर्राना हमारा काम है। बात वास्तव में यह है कि इन्सान से बाजी मारने के लिए चातुर्य की जरूरत है, जो जितना ही सीधा-सादा होता है, उतना ही पिटता है। महाशयो, हमे इन्सान की कोई शिकायत नही।

सभापति का भाषण—

इसके बाद सभापति श्रीकेसरीसिंह का अन्तिम भाषण हुआ। आपने कहा—

'भाइयो, मैंने सब व्याख्यान ध्यान पूर्वक सुने। वास्तव में इस 'अशरफ-उल-मखलूक़ात' कहे जाने वाले इन्सान ने हम लोगों की नाक मे दम कर रक्खा है। आप लोगो की कष्ट-कथा सुन कर,

मेरे दुःख का ठिकाना नहीं रहा। आप यह न समझें कि मेरी जाति के लोग पशुपति परिवार के होने से सुखी है। हमारी जाति पर भी इन्सान का घोर अन्याय होता है। हमे तो वह देख ही नहीं सकता, ख़बर लगते ही मारे गोलियो के हमें हलाक कर दिया जाता है। हमें कठहरो मे बन्द करके हमारी स्वाधीनता छीन ली जाती है। किसी समय हम सारे देश में आनन्द से चरते-विचरते थे, पर, अब तो बेचड़ों की तरह हमारे परिवार के लोग भी केवल कहीं-कहीं दिखाई देते है। इन्सान की जितनी शत्रुता हमारे वंश से है, उतनी किसी से नहीं। अभी आपने हजरत बन्दर और बीबी बिल्ली के व्याख्यान सुने; उन्होंने इन्सान की हिमायत की है, पर इन भूले भाई और भटकी बहिन को यह नहीं खबर कि उचक्कापन करना या छीना-झपटी से काम लेना पशु-परिवार की वंशपरम्परा के प्रतिकूल है। इसके लिये मनुष्यों के 'राष्ट्र' नामधारी समुदाय ही बहुत हैं। क्या हजरत बन्दर क़लन्दरो द्वारा लकड़ी के बल नहीं नचाये जाते ? क्या उन्हे पेट दिखा-दिखा कर टुकड़े नहीं मॉगने पड़ते ? इस घोर घृणित व्यवहार पर भी वह इन्सान का पक्ष लेते है, शर्म की बात है। (चारो ओर से शर्म ! शर्म !! शर्म !!!)

'बीबी बिल्ली का लुक-छिप कर इन्सान के जूठे बर्तनो को चाट लेना, या दाव-घात से कुछ खा-पी आना कोई गौरव की बात नहीं है। इसके लिए इन्हे अभिमान न करना चाहिए। अच्छा, मैंने अब खूब सोच लिया, और सब के उद्धार की एक बात सूझी है। महामहोपाध्याय श्रीगजराजजी और हम जैसे शक्तिसम्पन्न वीरवरो पर, क़ाबू करना, हमारे अन्य बलहीन भाइयो को सताना, हमारे विनाश के लिए गोला-बारूद, तलवार-बन्दूक आदि बनाना ऐसी बाते हैं जो अल्पशक्ति मनुष्य की बुद्धि के कारण ही हो रही है। बुद्धि न हो तो यह इन्सान साधारण

कीट-पतङ्गो से भी घटिया दरजे का बना रहे। सारे अनर्थों की जड़ मनुष्य की बुद्धि है, इसलिए मेरी सम्मति मे इस महासभा से, यह प्रस्ताव पास करके, 'खुदावन्द ताला' के पास भेजना चाहिए कि वह इन्सान से अक़्ल छीन कर, अपनी प्यारी प्रजा मे सुख-शान्ति स्थापित करे, और हम लोगो पर अन्याय न होने दे। उपस्थित समुदाय ने गगनवेधी गर्जना पूर्वक सभापति के प्रस्ताव का समर्थन किया और वह सर्वसम्मति से पास हो गया। सभा बरख़ास्त हुई और सब लोग अपने-अपने घरो को सिधारे।

भारतीय मुछमुण्ड-मण्डल

होलीपुरा के 'हुल्लड़-पार्क' मे, अखिल भारतीय मुछमुण्ड-मण्डल" का महाधिवेशन, खूब धूमधाम से मनाया गया। डेढ़ लाख निमुच्छे प्रतिनिधि सभामण्डप मे मौजूद थे। दर्शको के रूप मे, स्त्रियाँ, संन्यासी तथा बालक भी अधिक संख्या मे उपस्थित थे। स्वागत भाषण के पश्चात् सभा के पति "हिज हैवीनेस" मिस्टर निमुच्छानन्द महाशय का प्रभावशाली व्याख्यान हुआ, जिसकी अविकल रिपोर्ट नीचे दी जाती है। स्वीकृत प्रस्तावों की सूची फिर छपेगी, पाठको को उत्सुकता पूर्वक उसकी प्रतीक्षा करनी चाहिये।

सभापति का भाषण-

निमुच्छे महाशयो, आप लोगो ने आज मुझे इस "आल-इण्डिया मुछमुण्ड-महासभा" का प्रधानत्व प्रदान कर, अवश्य ही अपना कर्त्तव्य-पालन किया है। निस्सन्देह, मै सब दृष्टियों से इस 'मुच्छहीन-मजलिस' का मीर होने लायक़ हूँ। मुझ से अधिक उपयुक्त व्यक्ति, इस काम के लिये आपको और कोई न मिल सकता था। इस कर्त्तव्य-पालन और खोज के लिये मै आपको हार्दिक बधाई देता हूँ। परन्तु किसी प्रकार के धन्यवाद की आवश्यकता नही समझता। आज मुझे, इस बड़ी सभा मे, मुछमुण्डों को अधिक संख्या मे देख कर बड़ा हर्ष होता है।

आप जानते ही हैं, मेरी ६६ वर्ष की आयु हो गयी, परन्तु आज तक मनहूस मूछो को मेरे खूबसूरत चहरे पर, अपना क़ब्जा करने की जुरअत नही हुई। मै जानता ही नही कि मूछें क्या

होती हैं, और उनका कुल-संहार करने के लिए छुरा कैसे चलाया जाता है ? जैसा सुन्दर-सपाट चहरा आज से ५० वर्ष पूर्व था वैसा ही अब भी है। दॉत उखड़ गये है तो क्या है, बदसूरती तो नही आई, खाल सिकुड़ गई सही परन्तु उस पर बाल का अधिकार तो नही हुआ। ऐसी दशा मे मुझे मुछमुण्डता का "जन्म-सिद्ध अधिकार" (Birth right) प्राप्त है, और मै ही अपने को इस सभा का सभापति होने का सब से अधिक अधिकारी पाता हूँ।

आप लोगो ने भी मूॅछो का बहिष्कार कर बड़ा काम किया है। सन्तोष की बात है कि आप मे से कुछ सज्जन तो रोज और कुछ दिन मे दो-दो बार, छुरे की पैनी धार से इन दुष्टाओ का दर्पदलन करते रहते है। मेरा आप सब मुछमुण्ड महाशयो से सविनय अनुरोध है कि जहॉ तक हो, और जब तक पेश चले मूछो के झाड़झकार को मुखमण्डल पर न उगने दो। इनकी जड़ो पर उसी प्रकार कुठाराघात करो, जिस तरह चाणक्य ने कुश-मूल नष्ट करने के लिये किया था।

भाइयो, यह ठगिनी प्रकृति भी बडी विचित्र है, भला उसे इन मूछो के कूड़े-करकट को, इस चमकते चहरे पर जमा करने की क्या जरूरत थी। इससे फायदा तो कुछ है ही नहीं, हॉ नुक़सान जरूर है। जिस समय से इन कर्कशाओ के कॉटे, सुन्दर अधरो पर अकुरित होते है, उसी समय से सुन्दरतापूर्ण लालिमा पर कालिमा पुतने लगती है। ज्यो-ज्यो मूछो का दर्प बढता है, त्यो ही त्यो, उसका दलन करने के लिए, करों को कष्ट करना पड़ता है। जब तोडते-मरोड़ते, उखाडते-पछाडते, ऐठते-अमेठते हुए भी आप लोग मूछो को क़ाबू मे नही कर सके तभी तो उन्हे उस्तरे के घाट उतारने की सूझी। मगर, वाहरी निर्लज्जता! यह कम्बख्त इतनी वेशर्म है कि, रोज मुॅह मसले जाने पर भी सिर उठाये

विना नही रहती ! नित्य छुरा चलने पर भी अपनी शरारत से बाज़ नहीं आती !!

मुछक्कड़ लोग कहते हैं कि विना मूछो के चहरा बदसूरत हो जाता है, परन्तु यह उनकी कपोल कल्पना मात्र है। आप रात-दिन स्त्रियो, बालको और सन्यासियों को देखते है, मै तो समझता हूँ, इनकी सुन्दरता मूछो के न होने के कारण और बढ़ जाती है। आप लोग स्वयम् अपने सपाट मुंह पर हाथ फेरिये, शक्लो को शीशे मे देखिये, कितनी कोमलता और सुन्दरता मालूम होगी। अहा ! टेढ़ी-तिरछी, कपटी-चपटी, अकड़ती-सिकुड़ती, गुर्राती-हाहाखाती मूछो को मिटा कर, आपने मिथ्या भेद भाव दूर कर दिया और सचमुच अपने को नवयुवक बना लिया है। इस समय आप लोगो के निमुच्छे मुखमण्डलो से अपूर्व कान्ति टपक रही है।

स्वास्थ्य की दृष्टि से तो मूछो का विधान बहुत ही बुरा है। इस बात का कटु अनुभव मुछक्कड़ो को जुक़ाम के वक्त या दूध पीते अथवा रायता सपोटते समय होता है। सारी मूछें सन कर बरसाती छप्पर की तरह, टपकने लगती है। जो लोग 'सिगरेट' पीते है, उन्हे तो इनकी बड़ी ही हिफाजत करनी पड़ती है, कहीं इन तक आँच न पहुँच जाय। कभी कभी तो ये कम्बख़त खुद चुरट की चिता मे पड़ कर ख़ामख़ाह 'सती' हो जाती है। ऐसी दशा मे, महाशयो, मै नहीं समझता कि मूछो के पक्ष म लोग क्यों अपनी सम्मति दिया करते है।

जिस समय वृद्धावस्था पदार्पण करती है, उस समय ओठो पर 'तिल-चामरी' मूछें उसी प्रकार दिखाई देती हैं, जिस प्रकार किसी मनहूस मैदान मे खड़ी, गोरे-कालों की पिटी हुई पल्टन ! ज्यो-ज्यो स्याही पर सफेदी पुतती जाती है, त्यो ही त्यो चहरा, राजपूताने की मरुभूमि सा बनता जाता है। कैसाही सुन्दर, सुडौल,

सजीला मुख-मण्डल क्यों न हो. भूरी मूछें सारा मजा मिट्टी मे मिला देती है । कोई 'बाबा' कहता है कोई 'नाना', कोई वृद्ध कहता है और कोई 'बुजुर्ग'। कालौंच के क़िले पर सफेदी का झण्डा क्या फहराता है, सारा नक़शा ही बदल जाता है ! तभी तो तंग आकर महाकवि केशवदास ने कहा था—

> केशव 'मूँछन' अस करी, जस अरि हूँ न कराहि ।
> चन्द्रवदन मृगलोचनी, 'बाबा' कहि-कहि जाहि ॥

सो भाइयो, इन 'बाबा' बनाने वाली, वैरियो से भी बढ़ कर मूछों से बचो, इन सब आपत्तियो से बचने की एक मात्र अमोघ औषधि 'मुछमुण्डता' है—और कुछ नहीं ।

निमुच्छ महाशयो, आपको मालूम है कि, भारत के भूत वायसराय लार्ड कर्जन ने मूछो पर छुरा चला कर किस प्रकार अपने नाम के पीछे 'मुछमुण्ड फैशन' (कर्जन फैशन) चलाया ? सुनिये इसकी कथा बड़ी विचित्र है । एक दिन मुछक्कड कर्जन अपनी नवपरणीता प्रियतमा के कोमल कपोलो पर प्रसन्नतापूर्वक प्रेम-पीयूष प्रवाहित करने लगे, इतने ही मे उनकी पत्नी ने, प्रेमपगी वाणी मे झिडक कर कहा—('Are you kissing me or brushing me ?") "प्राणनाथ ! आप प्यार कर रहे है, या अपनी मूछो के कडे बालो की कुची से मेरे चहरे पर खुरहरा करते हैं ?" बस प्राणप्यारी के यह युक्तियुक्त शब्द सुन कर कर्जन साहब ने अपनी मूछो को उस्तरे की नजर कर दिया और फिर आजन्म उनका आदर न किया ! आज आप लोगो को उसी 'मुछमुण्ड महाशय' के अनुयायी होने का गौरव प्राप्त है । परमात्मा 'मुछमुण्डमत' के आद्याचार्य लार्ड कर्जन, और उनकी प्रियतमा पत्नी की आत्मा को चिर शान्ति प्रदान करे, जिन्होंने हमारे ऊपर ऐसा बड़ा उपकार किया ।

मुछमुण्ड महाशयो, यह कोई विनोद नहीं है, इसे कपोल-कल्पना न समझिये। अगर आप प्राचीन और नवीन इतिहास के पृष्ठ पलट कर देखेंगे तो, आपको सर्वत्र 'मुछमुण्डता' की ही महिमा दिखाई देगी। संसार के उद्धार कर्त्ता मर्यादापुरुषोत्तम राम सदैव मुछमुण्ड रहे, आनन्दकन्द ब्रजचन्द श्रीकृष्णचन्द ने कभी मूछों से सहयोग नहीं किया। मै चेलेज देकर पूछता हूँ कि क्या संसार मे कोई राम या कृष्ण की ऐसी एक भी तस्वीर अथवा मूर्ति दिखा सकता है, जिससे उनको 'निमुछमुण्डता' सिद्ध होती हो। सारे अजायबघर (म्यूजियम) देख डालिये, 'सारनाथ' का सार निकाल लाइये, पर अहिंसा के प्रबल समर्थक महात्मा बुद्ध की प्रतिमा के मुँह पर कहीं मूछों के कूड़े-करकट का ढेर दिखायी न देगा। परम दार्शनिक शंकराचार्य के चहरे को देखिये, मूछों का चिन्ह तक न मिलेगा। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का चहरा साफ नजर आवेगा। आधुनिक युग के सबसे बड़े सुधारक ऋषि दया-नन्द ने भी इस झाड़-झङ्कार को आदर नहीं दिया। अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द के सुन्दर-सपाट मुख मण्डल की पवित्र स्मृति कैसे भुलाई जा सकती है।

धार्मिक संसार ही नहीं, राजनैतिक जगत् का भी मुलाहिज़ा फरमाइये। राष्ट्रीय महासभा के मच पर, राष्ट्रपति की स्थिति से जिन्होने भाषण दिये हैं, उन मे अधिकांश हमारे मत के अनुयायी निमुच्छ महाशय ही थे, और है। दूर क्यो जाते हो, वर्त्तमान काल मे आँखे पसार कर देखिये, सी० आर० दास, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, श्रीनिवास आयंगर, सी० वाई० चिन्तामणि, भाई परमानन्द, श्रीनिवास शास्त्री, विपिनचन्द्र पाल इत्यादि-सैकड़ो नेता 'मुछमुण्ड-दल' के ही अनुयायी है। जो सज्जन अभी इस समुदाय के सदस्य नहीं बने वह बनते जा रहे हैं। विलायत मे जहाँ देखो वहाँ निमुच्छापन ही दिखाई देता है।

राजनैतिक और धार्मिक क्षेत्र से बढ़ कर, यह निमुच्छता साहित्य क्षेत्र मे भी विहार करने लगी है। आप गौर से देखे, बदरीनाथ भट्ट, लक्ष्मीधर वाजपेयी, वियोगी हरि, शिवप्रसाद गुप्त, कृष्ण-कान्त मालवीय, राधामोहन गोकुलजी इत्यादि–साहित्य-सेवियो के मुँह से मूछे ... के सींग की तरह उड़ गयी, और उड़ती जा रही हैं। हर्ष की बात है कि अब राजाओ मे भी यह सुप्रथा प्रचलित हो चली है, और सब से प्रथम, श्रीमान् बड़ौदा नरेश और राजा रामपालसिह साहब ने इस ओर अपना पवित्र पग बढ़ाया है।

मुच्छहीन महाशयो, मैंने यह दो-चार उदाहरण दिये हैं, बहुत मिसालो से व्याख्यान बढ़ जायगा, समय थोड़ा रह गया है। 'स्थायी पुलाक न्यायेन' इतने ही से आप लोग सब कुछ समझ लीजिए। कोई भी अच्छी प्रथा देश मे कठिनाई से प्रचार पाती है। 'मुछमुण्डता' का विस्तार भी धीरे धीरे ही होगा, परन्तु होगा अवश्य यह हमारी ध्रुव धारणा है। विना मुछमुण्डता के देशोद्धार हो ही नही सकता। सबको इस पथ का पथिक बनना ही पड़ेगा। मुझे भय है कि कही कट्टर हिन्दू यह न कह बैठे कि इसने हँसी-ख़ुशी के अवसर पर कैसा निमुच्छपन का बकवाद कर डाला! मूछे तो शोक मे मुड़ाई जाती हैं। हाँ, इन लोगो को समझाने के उद्देश्य से मै 'भरमी' कवि के शब्दो मे कहूँगा—

जिहि मुच्छन धरि हाथ,
कछू जग सुयश न लीनो।
जिहि मुच्छन धरि हाथ,
कछू जग काज न कीनो॥
जिहि मुच्छन धरि हाथ,
कछू पर पीर न जानी।

जिहि मुच्छन धरि हाथ,
दीन लखि दया न आनी ॥
मुच्छ नाहिं वे पुच्छ हैं,
कवि 'भरमी' उर आनिये ।
नहि वचन-लाज नहिं दान-गति,
तिहि मुख मुच्छ न जानिये ॥

बोलो, कमाया कुछ जग मे 'सुयश'? किया कोई संसार का 'काज'? मिटाई दुखिया माता की 'पीर'? की दीनो पर 'दया'। पाले 'वचन' और दिया 'दान'? नहीं—तो फिर? फिर क्या, इन 'पूँछ रूपी मूछो' को मुड़ाओ और पशुता का कलंक मिटाओ ! इस दृष्टि से भी मूछों की कोई आवश्यकता नही है !! शोक?—शोक की अच्छी कही, जिसका दस-बीस रुपये का माल कोई छीन लेता है, उसके शोक का ठिकाना नही रहता। परन्तु जहाँ सर्वस्व छिन गया हो—स्वाधीनता तक नष्ट करदी गई हो, करोड़ो लाल चिथड़ो और टुकड़ो के लिए तरस रहे हो, लाखो विधवाएँ बिलबिला रही हो, और अनाथो का ठिकाना न हो, अगणित भाई अकाल मृत्यु के मुँह मे पड़ रहे हो वहाँ शोक नही तो क्या हर्ष होगा? पारिवारिक शोक मे दो चार कुटुम्बी मूछें मुड़ाते है, तो देश के शोक मे सारे देशवासियो को 'मुछमुण्ड' बनना चाहिए। यही मेरी प्रार्थना है ।

बस, अब मै अपने अभिभाषण को सदाशा पूर्वक समाप्त करता हूँ। समाप्त करने के पूर्व एक बात बता देना चाहता हूँ। मेरे पास 'मुछमुण्ड-सभा' के कुछ अनुपस्थित सदस्यो के तार आये है, जिन्होने इस महासभा के कार्य की सफलता चाही है, और साथ ही लिखा है कि 'मुछमुण्ड' नाम बहुत बुरा है, कर्णकटु है। उसे बदल कर महासभा का, कोई शुद्ध-संस्कृत नाम रख दिया

जाय। इन तार भेजने वालो मे—मठों के जगद्‌गुरु, वृन्दावन तथा गोकुल के गोस्वामी, अयोध्या के रामफटाका आदि हैं। मेरी सम्मति में 'मुछमुण्ड' के स्थान मे 'सखी-सम्प्रदाय' नाम ठीक रहेगा। यह नाम मुझे तो उपयुक्त जँचता है, आप लोग अपनी सम्मति दें। उपस्थित सदस्यो ने 'ठीक-ठीक', 'स्वीकार'-'स्वीकार' कह कर 'सखी-सम्प्रदाय' का समर्थन किया और इस प्रकार मिस्टर निमुच्छानन्द का प्रभावशाली भाषण समाप्त हुआ। बोलो 'सखी-सम्प्रदाय' की जय!

बिरादरी-बिभ्राट्

प्रथम अंक

(पहला दृश्य)

(स्थान—अन्धेर-नगरी)

सुधारक—गाता है—

गिरों को गले लगावेंगे।
अछूतों को अपनावेंगे॥

कर-कर भेदभाव की बातें, हाय ! हुए हम दूर।
भाई में भाई के लिए, वैर भरा भरपूर॥

उसे हम जल्द मिटावेंगे।
अछूतों को अपनावेंगे॥

दुर-दुर छुआछूत के कारण प्यारा भारत देश।
रंक हो गया, भोग रहा है, हा ! हा !! कष्ट कलेश॥

सुनो, हम सुखी बनावेंगे।
अछूतों को अपनावेंगे॥

जाति-पाँति के जटिल जाल ने फांस लिये हम लोग
भूल गये भ्रम सागर में पड़, करने शुभ उद्योग॥

न अब अनुदार कहावेंगे।
अछूतो को अपनावेंगे॥

तोड़ गुरूडम की गढ़िया को फोड़ घृणा-घट-खण्ड।
छोड़ छद्मता छलियापन की, दूर करें पाखण्ड॥

प्रेम-पीयूष बहावेंगे ।
अछूतों को अपनावेंगे ॥

हे भगवन्! जो आर्यजाति का करदो अभ्युत्थान ।
तो, फिर हमें मिले भूतल पर पहला सा सम्मान ॥

विजय का शंख बजावेंगे ।
अछूतों को अपनावेंगे ॥

दम्भदेव—अरे, यह कौन चीख़ रहा है, कलियुग मे तरक़्क़ी का तराना किसे सूझा है, द्वारपाल! जल्द इस रेकुए को पकड़ कर लाओ ।

बकता है बार-बार यह कैसा गँवार है ।
मक्कार 'धर्म-नाश' को समझा सुधार है ॥
लाओ इसे घसीट अभी ठीक करूँ मैं ।
लम्पट, लबार, लएठ का अज्ञान हरूँ मैं ॥

द्वारपाल—"महाराज! जो आज्ञा" (कहकर जाता है)

दम्भदेव—(स्वागत) आने दो इस अछूतों को उठाने और गिरों को गले लगाने वाले को! सारी अक़्ल ठिकाने कर दी जायगी! सब बातें बनाना भूल जायगा!!

द्वारपाल—महाराज! वह गाने वाला आगया है ।

दम्भदेव—फौरन उस रेकुए को हमारे हज़ूर मे हाज़िर करो ।

द्वारपाल—जो हुक्म—

सुधारक—(दम्भदेव से) 'वन्देमातरम्' महोदय! कहिये, कैसे याद फरमाया?

दम्भदेव—तुम गुस्ताख़ आदमी! अभी क्या बक रहे थे । जानते नहीं हो कि मै दम्भदेव हूँ—मेरे इधर-उधर इस तरह का बेहूदा बकवाद करना 'गुनाहेअज़ीम' समझा जाता

है। मुआफ़ी माँगो और आगे से ऐसी अण्डबण्ड बातें न बकने का अहद करो।

सुधारक—नही साहब, यह रौशनी का ज़माना है, हमे जो कुछ कहना है, ज़रूर कहेगे। सचाई से आप किसी को नही रोक सकते। माना कि आप समर्थ और स्वामी है, पर, हम स्वतन्त्र मत प्रकट करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं।

दम्भदेव—अरे, कोई है जो इस मुँहज़ोर का मुँह सीधा करे। (ज़ोर से चिल्लाता है)—"उद्दण्डसिह!"

उद्दण्डसिह—महाराज! क्या आज्ञा है?

दम्भदेव—(सुधारक की ओर इशारा करके) इस गुस्ताख़ को पकड़ कर ले जाओ, और हवालात मे बन्द कर दो। बड़ा नामाकूल है, भङ्गी और चमारो को उठाना चाहता है—उनके गले लगाने की बात बकता है।

उद्दण्डसिंह—बहुत अच्छा, सरकार! (धक्का देकर सुधारक की गरदन पकड़ता है।)

सुधारक—याद रक्खो, हम कच्चे खिलाड़ी नही हैं जो तुम्हारी धमकियो से अपना उसूल छोड़ दें—'कुम्हड़बतियाँ' नही हैं जो 'तर्जनी' देखकर मुरझा जायें। अरे, यह शरीर बड़ी-बड़ी आफतो का इस्तक़बाल कर चुका है; सैकड़ो सङ्कटो का केन्द्र बन चुका है, पर, उफ नही की—

'सिदाक़त के लिये गर जान जाती हो तो जाने दें।
मुसीबत पर मुसीबत सर पै आती हो तो आने दें॥'

दम्भदेव—ले जाओ! ले जाओ!! इस सचाई के सिरकटे को,

क़ैदख़ाने मे, ले जाओ !!! वहॉ पडा पड़ा सड़ता रहेगा, या इसकी अक़्ल ठिकाने आ जायगी ।

सुधारक—दम्भदेव ! आप क्या कहते है ? भला इन गीदड़-भभकियो से भी कुछ हो सकता है ? देखो—"यह वह नशा नही जिसे तुरशी उतार दे ।"

दम्भदेव—अरे उद्दण्ड ! इसे कालकोठरी मे क्यो नही ले जाता ?

उद्दण्ड—अन्नदाता ! दीवान दुर्जनमल आ रहे है, अभी जाता हूँ ।

(दीवानजी का प्रवेश)

दुर्जनमल—(दम्भदेव को प्रणाम करके) इस बँधुए से क्या गुस्ताख़ी बन गई, महाराज ! जो श्रीमान् का मुखमंडल कुछ क्रुद्ध सा दिखाई देता है ।

दम्भदेव—यह गॅवार सुधारको का सरदार बनता है, चमारो और भंगियो को गले लगाने की बात बकता है ।

दुर्जनमल—शिव ! शिव !! बड़ा बज्जात है, महाराज !

दम्भदेव—और फिर शोख़ी इस क़दर कि अपनी ग़लती मानकर माफी तक नही मॉगता, बल्कि अपनी नाजायज़ हर-क़त पर ज़िद करता है ।

दुर्जनमल—हरे कृष्ण ! वासुदेव !! इतनी ढिठाई और ऐसी निर्लज्जता ! तो क्या इसे कालकोठरी मे भेज रहे हैं, हुज़ूर ।

दम्भदेव—हॉ—

दुर्जनमल—अन्नदाता की जो आज्ञा हो, है तो वही ठीक, पर, मेरी सम्मति मे, तो, इसका जेल जाना ठीक न रहेगा । वहॉं यह खायगा और गुर्रायगा, दूसरे क़ैदियो को भी भड़कायगा । बहुत सख़्ती की जायगी तो 'सत्याग्रह' कर देगा ।

दम्भदेव—फिर क्या किया जाय ?

दुर्जनमल—महाराज ! इस बेवकूफ ने "पंच-पुराण" द्वारा संस्थापित बिरादरी-बिलडिंग की बुनियाद हिलाने की चेष्टा की है, अतएव यह क़ौमी कौंसिल के 'वर्णविपर्यय' एक् की ७४६ वीं धारा के अन्तर्गत आता है ।

दम्भदेव—हाँ-हाँ यह तो बहुत ही संगीन जुर्म है । इसके लिए तो मामला पंचराज के सुपुर्द करना पड़ेगा ।

दीवान—महाराज की जय बनी रहे, यही मेरा मतलब है ।

दम्भदेव—अच्छा, लाल लिफाफा लिखो, और मुक़द्दमे को फैसले के लिए पंचराज की पंचायत मे भेज दो ।
(भेजा जाता है)

दूसरा दृश्य ।

(स्थान पंचपुरी)

(पंचराज का दरबार)

जाति-पांति ही का आधार ।
है सारी उन्नति का सार ॥
छूत-छात का छोड़ घमण्ड ।
बकते है, जो-जो उद्दण्ड ॥
सब को पकड़ जेल में ठेल ।
देखो, खूब निकालो तेल ॥

पंचराज—(दहाड़ कर) देखो, कलजुग मे कोई धर्म भ्रष्टता के गीत न गाने पावे, जाति-पाँति का जितना विस्तार हो सके करो, मजहबो को इतनी फैलावट दो कि एक-एक घर मे छै-छै मतवाले दिखाई देने लगें । खबरदार ! अछूतों

का कोई नाम भी न ले, अगर ले भी तो उसी वक्त हलक़ मे 'फनायल' डाल कर तुरन्त जीभ साफ की जाय।

चमरो को चढ़ाता है, भगी को भिड़ाता है।
उन्नति के अखाडे में, वह टाँग अड़ाता है॥

मन्त्री—महाराज! यह घोषणा सबको सुनादी गई। श्रीमान् की कृपा से ख़ूब फूट फैल रही है, छूतछात ने बड़ा आनन्द कर रक्खा है, मादकता की मृदुलता से सारा संसार मुग्ध हो रहा है।

पंचराज—ह ह ह ह! हाँ तो हमारा आतङ्क अच्छा काम कर रहा है।

मन्त्री—महाराज! बहुत ज्यादह।

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—(मन्त्रीजी से) अन्नदाता! यह लाल लिफाफा है और बाहर पॉच सिपाहियो सहित एक आसामी भी मौजूद है।

मन्त्री—(लिफाफा पढ़कर—हर्ष और आतङ्क से) सब को जल्द लाओ। (सब आते हैं)

सिपाही—(सलाम करके) हुजूर! इस आसामी ने रास्ते मे हमारा नाक मे दम कर दिया, कान खा लिये। 'सुधार-सुधार' ही चिल्लाता आ रहा है।

मन्त्री—अच्छा, चुप रहो–हम सब इन्तजाम कर देंगे। (पंचराज को सम्बोधन करके) महाराज! बॅधुआ, श्रीमान् दम्भदेव ने, वर्णविपर्यय ऐक्ट की ७४६ धारा के अनुसार इस दरबार में फैसले के लिये भेजा है। इसने अछूतों को उठाने या गिरो को गले लगाने की परोक्ष या

प्रत्यक्ष रूप से चेष्टा की है! अब महाराज की जो आज्ञा।

पंचराज—क्यों रे बेहूदे तू क्या बकता था?

सुधारक—मै नेकनीयती से लोगों का सुधार करता रहता हूँ, वैसे ही भजन भी गाता हूँ। आजकल अछूतो के उठाने का आन्दोलन जारी है। बस, इसी बात पर मुझे पकड़ लिया गया है।

पंचराज—हाँ—ठीक है!! "इसी बात पर!"—मानो, यह कुछ है ही नही!

सुधारक—साहब! मैंने चोरी नहीं की, जारी नही की, डाका नही डाला, और भी कोई बुरा काम नहीं किया—फिर

पंचराज—(बड़े ज़ोर से हँस कर) ह ह ह ह! (मन्त्री की ओर मुँह करके) देखा, कैसा बेवकूफ़ है! अपने क़सूर को चोरी, जारी, डाका वग़ैरह से भी कम समझता है।

मन्त्री—हाँ, हुज़ूर! देखिये न! मेरी राय मे तो अब चपरपञ्चजी को बुला लिया जाय, जिससे वह इस आसामी से जिरह करलें और फिर फैसला सुना दिया जाय।

पंचराज—हाँ, ठीक है, बुलाओ।

(चपरपंच का प्रवेश)

चपरपंच—(पंचराज से) महाराज की जय हो! हाजिर हूँ, हुज़ूर!

पंचराज—अच्छा, चपरपंच, इस आसामी से हमारे सामने जिरह करो।

चपरपंच—(जो आज्ञा कहकर आसामी (सुधारक) की ओर मुख़ातिब हुए और हाथ मे 'मिसल' लेकर पूछने लगे)

हाँ, तो, तुमने पंच-पुराण द्वारा संस्थापित बिरादरी-बिल्डिंग की बुनियाद हिलाने की चेष्टा की थी !

सुधारक—मैंने "अछूतो को अपनावेगे, गिरो को गले लगावेगे" सिर्फ यह भजन गाया था ।

चपरपंच—हॉ—वही बात, हमने सब बातें मिसल मे पढ़ ली हैं। अच्छा, तो,तुम्हारा अछूतो को उठाने से क्या मतलब है?

सुधारक—यही कि उनको पढ़ाया-लिखाया जाय, सुनागरिक बनाया जाय, घृणा दूर की जाय जिससे वे दूसरे धर्मो मे न जाने पावे -

चपरपच—इस तरह करने से बिरादरी बरबाद हो जायगी, चमार-भंगियों से घृणा न की जायगी, तो, सब सरभङ्गी बन जायँगे।

सुधारक—वह भी तो हिन्दुओ के भाई हैं, चोटी रखते हैं, राम और कृष्ण को मानते हैं, अपने को हिन्दू कहते है। घृणा की क्या बात है, अब भी तो किसी न किसी रूप मे लोग उनको छूते हैं, और उनके हाथ का खाते भी हैं।

चपरपंच—यह और बात है ।

सुधारक—मैं इन लोगो से मदिरा छुड़ाता हूँ, इन्हें और भी बुरे कामो से रोकता हूँ। आप देखते है कि, सहस्रों शिखा-सूत्रधारी छिप-छिप कर शराब पीते है—

चपरपंच—यह और बात है ।

सुधारक—रात-दिन बिरादरी मे गुप्त रूप से कुकर्म हो रहे हैं, पर कोई कुछ नही कहता ।

चपरपंच—यह और बात है ।

सुधारक—बड़े-बड़े धोतीलटक्कू लोग चमारो का गुड़ गटकते, रेवड़ी कुटकते, बताशे सटकते और मुसलमानो के बने शरबत डकार जाते हैं, पर उनसे कोई कुछ नही कहता।

चपरपंच—यह और बात है—

सुधारक—बेटी बेचने वालो की सख्या बढती जाती है, बुड्ढो के विवाह हो रहे है, विधवा बिलबिला रही हैं, पर, इस ओर दम्भदेव का ध्यान नही गया।

चपरपंच—यह और बात है—अच्छा अब चुप रहो। तुम्हारी बाते सुन लीं, तुम बडे मुँहजोर हो, कोई ढङ्ग की बात नही कहते।

पंचराज—अच्छा, मन्त्रीजी, अब इसका बकवाद बन्द करो, मैं बहुत जल्द सजा तजवीज करता हूँ।

मन्त्री—बहुत अच्छा, हुजूर! 'चुप रहरे, रेकुआ।'

पंचराज—हाँ, तो, इसने पच-पुराण द्वारा संस्थापित बिरादरी-बिल्डिग की बुनियाद हिलाने की प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से चेष्टा की है—उस बिरादरी की जो सैकड़ों-हज़ारो बरसों से बड़े-बड़े पापकाण्डो को देखती हुई भी हमारी खातिर ज़िन्दा है—उस बिरादरी की जिसने अपने अस्तित्व के आगे किसी पाप-पुण्य का कभी विचार नही किया—उस बिरादरी की जो बड़े-बड़े आचार-हीनो को भी छाती से लगाकर सदैव उन्हे आश्रय देती रहती है—उस बिरादरी की जिसमे पतित से पतित भी मूंछो पर ताव देकर, साम्यवाद का उपदेश कर सकता है—उस बिरादरी की जिसने विधवाओ की बिलबिलाहट देख कर भी उनके विवाह की व्यवस्था देने का अपराध नहीं किया—उस बिरादरी की जिसने

ज़रा-ज़रा सी बातो पर लाखों लोगों को बाहिर कर अपना औचित्य पालन किया !!! हाय ! हाय !! ऐसी कल्पलता को यह सुधारक सुग्गा उखाड़ फेकना चाहता है, ग़ज़ब !!! अच्छा, मन्त्री, इसे ५ साल के लिये जेल में ठेल दिया जाय।

मंत्री—हुज़ूर ! यह तो बहुत थोड़ी सज़ा है। एक दो दस पाँच आदमियो के क़त्ल करने की कोशिश करने वाले को इतने दिन का दण्ड दिया जाता है, पर, इसने तो 'पंच-पुराण' द्वारा प्रतिष्ठित सारी बिरादरी को ही उलट देने का मनसूबा बाँध लिया था, इससे लाखों लोगों की जान का नहीं ईमान का ख़तरा था।

पंचराज—(आश्चर्य से) बेशक ! हमारी सरकार दीन-ओ-ईमान की हिफाज़त के लिए तो क़ायम ही है। अच्छा, तुम्ही बताओ क़ातिल से भी ज्यादा क़सूरवार आततायी को क्या सज़ा दी जाय ?

मन्त्री—महाराज ! मेरी राय में तो इसे बिरादरी से बाहर कर देना चाहिये। इससे उसके महाभयङ्कर प्रयत्न का प्रशमन हो जायगा, और हुजूर के क़ौमी कोड मे यही "कैपिटल पनिशमैंट" है।

पंचराज—अच्छा ! अच्छा !!—मंजूर ! रेंकुआ विवाह शादी मे न बुलाया जाय, बिरादरी से अलग, हुक्का-पानी बन्द, न्योता न दिया जाय, और किसी तरह का व्यवहार इसके साथ न रक्खा जाय। मन्त्रीजी हमारी इस आज्ञा को 'हुल्लड़-हैरल्ड' में छपवा कर 'मिसल' दम्भ-देव के दरबार मे भेज दो, और अब इस अभियोग का अन्त करो।

(परदा गिरता है)

पाखण्ड-प्रदर्शन

(प्रथम दृश्य)

(स्थान-पुरोहितपुरा)

पं० डमरूदत्त—हरे कृष्ण, वासुदेव, गोपाल, गोविन्द, चूड़ामणि, बड़ौ अनर्थ है गयौ, ग़जब कौ गोला गिर गयौ, आफत की आग बरसन लगी, सकट कौ सागर उमड़ि आयौ, शिव ! शिव !! चमारन कौ, जौ है ते, जे हौसलौ ! ऐसी हिम्मत !! इतनौ साहस !

ठा० सितारसिंह—मारो साले को ! कौनसा चमार पण्डितजी को तकलीफ पहुँचा रहा है। मारो ! मारो !! एक मत सुनो, लाठी से सिर तोड़ दो, और मौक़ा मिले तो पेट फोड़ दो !

ला० मजीरामल—हाँ, हाँ ! दौड़ रे ठकुरिया ! देख पण्डितजी और ठाकुर साहब कहा कह रहे हैं। मार ससुरे के सिर पै तराजू कौ पलड़ा, और तोड़ दे लोहे के बाटन सूं कनपुटी ! आयो कहूँ को चमार-धमार।

ठकुरी—(लालाजी का नौकर झुँझलाकर) लालाजी, तनिक पण्डितजी और ठाकुर साहब से यह तो पूछ लेते कि बेचारे चमार का क्या क़सूर है, और वे उससे इतने क्यों नाराज़ हो रहे हैं ? आव देखा न ताव, पूछ की न गछ ! तुम भी 'मार ! मार !!' चिल्लाने लगे, भला कोई बात है !

डमरूदत्त—जोहै ते, ठकुरिया, तू बड़ौ लंठ है। अरे दुष्ट, आज हम पाठ कर रहे हते, सोई, जो है ते, चेता चमार कौ चाचा हमें पालागे कर के चलौ गयौ, जासूं हमारी सबरी पूजा बिगर गई। पूजा मे चमारादिकन को सब्द सुनबोहू बुरौ बतायौ गयो है। समझौ कि नहीं ?

ठकुरी—महाराज! चमार से तो तुम इतनी घृणा करते हो, पर उस चुंगी के चपरासी (मुसलमान) से कुछ नही कहा जिसने ऐन आचमन के वक्त, पानी के महसूल के तकाजे के मारे तुम्हारा नाक मे दम कर दिया था।

डमरूदत्त—(क्रोध से) जोहै ते लंठ, चुंपकौ रह, तू सास्त्रन के विखै मे कहा समझै है। जोहै ते, लाला मजीरामल, ऐसे निकृष्ट-भ्रष्ट नौकर कूं निकार देहु। जोहै ते—

मजीरामल—चलरे ठकुरिया! अपनौ रस्ता पकड़! हमारे पुज्जन के आगे ऐसी मोहजोरी करेगौ तो कैसे काम चलेगौ। जा अपने घर बैठ। डेढ़ रुपया तीन आना तेरी तनुखा कौ निकरे है सो सात दिना पीछे लै जाइयो।

ठकुरी—अच्छा, सेठजी! चल दिये, "राम-राम।" कलियुग में सच्ची बात कहने वाले को ऐसा ही इनाम मिलता है!

सितारसिंह—पंडितजी, हमने सब चमारो की झोंपडियाँ उखड़वा कर फिकवा दी। साले बडे नमकहराम थे। पहन-पहन कर खद्दर के कुरते और ओढ़-ओढ कर गाँधी टोपी, जिस समय मेरी चौपाल के सामने अकड कर निकलते थे, तो, मेरे गुस्से का ठिकाना न रहता था। फिर, आपके साथ यह वाक़आ हुआ, इसने तो मेरे छोक ही लगा दिया!

डमरूदत्त—धन्न हो, ठाकुर जी, धन्न! भगवान् करे, जो है ते, तुम्हारी बारी-फुलवारी बनी रहे, और याही प्रकार चमारन सूँ लड़ाई ठनी रहे।

मजीरामल—खूब साव खूब! वा ठाकुरजी वा!! धन्न माराज, धन्न!!! हम जैसे ब्राह्मन, ठाकुर बनिये न होय तो माराज! धरम धरती मे धँस जाय और करम काँपतो डोलै। मैने हूँ ठोठुआ ठकुरिया कूँ निकार दियो! कहो कैसी रही?

सब लोग—"खूब रहे जी खूब रहे।
कह पंडित के पैर छुए॥"

(दूसरा दृश्य)

(स्थान चमार-चौपाल)

(बड़ी पंचायत)

चेता—पुरोतपुरा के बनिये, ठाकुर और बिरामनन ने हम निकार दिये। हमारो कसूर कछू नही था। मैने डमरू माराज कूँ पालागे करी और वह मारिवे दौड़ौ। ठाकुरजी कूँ हूँ गुस्सौ आय गयो, लाला हूँ बिगड़ बैठे, बिचारौ ठकुरी वैसे ही मारो गयौ। कैसौ अन्धेरखातो है, जापै सब पंच भय्या विचार करलें।

द्विजदास—बहुत बुरी बात है।

सरदार—अजी, अब इस तरह काम नही चलेगा। आखिर हम लोगो ने भी तो पढ़ा-लिखा है। अगर इसी तरह अपमानित होते रहेगे तो एस० एल० सी० की सनद और प्रथमा परीक्षा का प्रमाणपत्र किस काम आवेगा?

चिम्मन—नहीं ! नहीं !! अन्धेर का वक्त गया, अब हम अत्याचार नहीं सहेंगे। अगर हिन्दू-समाज हम लोगों को इस तरह तङ्ग करेगा तो हम उसे हमेशा के लिये छोड़ देंगे।

चेता—(रोकर) भय्या ! मेरे ऊपर जो अन्याउ भये हैं तिनकूं मै कैसे सुनाऊँ। रोज याही तरह तंग होते रहोगे, खानो न कमानो ! विचारे मटरू, सुरजा, चन्दा, झगड़ू और झम्मन के तो कऊ बेर जूता तक लगे हैं। गली में हैके निकरन तक नहि दयौ। दुजदसा और सिरदरा की पढ़ाई देख के तो ठाकुरजी के पेट मे पानी है गयो है, पडितजी भुन गये है, और लालाजी कुढ़न लगे है।

(चमारो की ऐसी नाराजगी देख कर मौलवी तथा पादरी का आना और अपना उल्लू सीधा करना)

द्विजदास—मौलवी निजातअली, कहिये, आप क्या कहते है ? सब भाई ध्यान से सुनो।

मौलवी साहब—मेरे चमार भाइयो ! तुम अपने को जिस क़ौम के मुतअल्लिक़ बताते हो, वह मुतलक मुरदा और बिल्कुल बेवकूफ है। जब तुम्हारे साथ इस किस्म की सख्तियाँ हो रही हैं, ऐसे गैरमुहज्जिबाना बदसलूक किये जा रहे है, तो, तुम क्यो हिन्दुओ की दुम के पीछे दौड़ते फिरते हो ? जो शख्स तुम्हे देखने, तुम्हे छूने, तुम्हारे साथ गुफ्तगू करने तक में नफरत करते है, उनके साथ उनसियत और उल्फत रखना या उनके गिरोह मे अपने तई समझना सख्त नाआक़बत अन्देशी और कोरी हिमाकत है।

गफूर अहमद—चलो मसजिद से, कटाओ चोटी और बनो मुसलमान। हम तुम्हारे साथ हुक्का पीयेंगे और तुम्हारी रोटी खायँगे। तुम्हारे साथ रिश्तेदारी करेंगे और तुम्हे अपना दीनी भाई समझेंगे। जो हिन्दू आज तुम्हे देख तक नही सकते, कल उन्ही के कुओं पर पानी भरना और अकड़ कर निकलना।

चमार लोग—"ठीक है! मजूर!! मंजूर!!! चलिए, मसजिद को और पढ़ाइये कलमा! राम न सही रहीम कहेगे। अगर चोटी कट जायगी तो दाढ़ी पर हाथ फेरेंगे। पर, हिन्दुओ के हल्लों से तो बच जायँगे। बेचारे साहब बहुत देर से बैठे है, इनकी भी सुन लो और चलो।

पादरी मसीहशरन—भाइयो, मौलाना लोगों ने ठीक फरमा दिया है, हिन्दू लोग दर असल ऐसे ही हैं। तुम्हारे लिये मसजिदों और गिरजो के दरवाज़े खुले हुए है चाहे जिधर जाओ, पर हिन्दू मत रहो। मसीह की शरण मे जाने से बड़े-बड़े अफसरो से मुलाक़ात होगी। साहबो से हाथ मिलाने का मौक़ा मिलेगा, नौकरी पाने की दिक्कत जाती रहेगी और कोट-पतलून के लिये तरसना न पड़ेगा।

मौलवी साहिबान—हाँ, ये भी ठीक कहते है, पर, बात पहली ही दुरुस्त है। अच्छा, तो चलो, जो हमारे साथ सीधे जामामसजिद को चलना चाहे वह उठ खड़े हो, और जो पादरीसाहब के पिछलगू बनें वह उनके साथ जायँ।

पंचायत—जाइये पादरी साहब, वह आपके साथ हैं—आइये मुन्शीजी हम तुम्हारे पीछे चलेगे। बस, कज़िया पाक, और मामला साफ हुआ।

(तीसरा दृश्य)

स्थान—दातागंज।

(महल्ला—पुण्यपुरा)

सज्जनसिंह—देखा, पण्डितजी! पुरोहितपुरा के चमार, मुसलमान बन कर अब इस शहर मे भी आ गये हैं। कितने ही पढ़े लिखे तो दफ्तरो मे मुंशी और बाबू हैं।

हरदत्त—अच्छा जी! हमें दिखाना।

सज्जनसिंह—अरे! अभी-अभी जो महादेव के मन्दिर पर कुए से पानी भर रहा था, तथा कल जो आप से हाऊस टेक्स के लिये तकाज़ा कर रहा था और आध घन्टे तक बराबर आपके पास पलँग पर बैठा रहा, क्या उसे पहचानते हो?

हरदत्त—नहीं तो—

स० सिं०—यही तो चमार थे।

हरदत्त—चमार से मुसलमान कैसे हो गये, बड़े मूर्ख है जो अपना धर्म छोड़ दूसरे मत मे जा पहुँचे।

शिवगुप्त—भाई, स्वार्थ बुरी बला है, वह आदमी से सब कुछ करा लेता है।

सज्जनसिंह—स्वार्थ क्या है? चमार रह कर खाने-कमाने के लिए जो महनत-मशक्क़त करनी पड़ती थी, उस से कहीं अधिक बेचारो को अब आफत झेलनी पड़ती है। मुसलमान क्या उन्हे कुछ दे देते हैं? महनत करते हैं, कमाते और खाते हैं।

हरदत्त—स्वार्थ नहीं तो फिर क्या बात है ?

सज्जनसिंह—क्या बात है ? अगर ये चमार होते तो क्या तुम उन्हे अपने पलॅंग पर बैठने देते, कुओ पर चढ़ने देते, उनसे शरीर छुआते और हाथ मिलाते ?

हरदत्त—नहीं, ऐसा तो नही करते।

सज्जनसिंह—बस, इसी लिए उन्होने तुम्हारा साथ छोड़ा, चोटी कटाई, और राम-कृष्ण के नाम को तिलाञ्जलि दी !

शिवगुप्त—बात तो ठीक है। महनत मज़दूरी करके पेट तो हिन्दू धर्म मे भी भर सकते थे। पर, व्यवहार उनके साथ बुरा था, इसलिए वे अलग हो गये।

हरदत्त—क्यो जी, ऐसे कितने हिन्दू बेदीन हो गये।

सज्जनसिंह—लाखो !

शिवगुप्त—शिव, शिव ! इसका अर्थ तो यह हुआ कि राम-कृष्ण का नाम लेकर हिन्दू जाति की रक्षा करने वाली हमारी बहुत बड़ी शक्ति कम हो गई, और हो रही है।

सज्जनसिंह—और क्या नही ?

हरदत्त—इस तरह तो हिन्दू जाति का लोप हो जायगा ! क्या इस से बचने का कोई उपाय नही है।

शिवगुप्त—क्या हमारे बिछुड़े भाई फिर नही मिल सकते ? क्या बिछुड़ने वालो को अपना बनाये रखने की कोई विधि नहीं है ?

सज्जनसिंह—है क्यो नही, आप लोग अपने हृदय मे उदारता का संचार कीजिये, क्षुद्रता निकालिये, प्रेम पसारिये और हिन्दू-महासभा के प्रस्तावो को कार्यरूप में परिणत कीजिए।

शिवगुप्त—कौन से प्रस्ताव ?

सज्जनसिंह—क्या आपने नहीं पढ़े ? (अख़बार देकर) लीजिये, पण्डित जी, पढ कर सुनाइये।

हरदत्त—(पढ़ते हैं) "हिन्दू महासभा अछूतो को कुओ पर चढ़ने, और मन्दिरों मे दर्शन करने का अधिकार देती है, उन से घृणा न की जाय। यह महासभा राजपूत मलकानों की शुद्धि का समर्थन करती है।"

सज्जनसिंह—कहिए, हैं मजूर ?

हरदत्त और शिवगुप्त—अच्छी तरह, दिलोजान से, होने दीजिए शुद्धि, मिलाइये बिछुड़ो को, और अपनाइये अछूतों को। हम साथ हैं, साथ है, साथ है! जब हिन्दू-महासभा ने ही यह प्रस्ताव पास कर दिए तो हम कहाँ रहे ?

(चतुर्थ दृश्य)

(स्थान—कृष्णपुरी का भ्रातृ-सम्मेलन)

राजपूत मलकाना—स्वामीजी, हमारे पूर्वज शाही जमाने मे मुसलमान बनने को मजबूर किये गये थे। वे नाममात्र को वैसे बन गये पर उन्होंने हिन्दूपन नहीं त्यागा। हम उनके वंशज हैं। हिन्दुओ की तरह रहते हैं, जनेऊ पहनते है, गङ्गा, गायत्री और गाय को मानते हैं। हमने सुना है कि आप हमे फिर राजपूत बिरादरी मे लेने को तैयार है। अगर ऐसा है तो मिला लीजिए।

स्वामीजी—खुशी से आओ, हिन्दू बनो, और अपनी राजपूत बिरादरी मे मिलो। सकोच की कोई बात नहीं है। अब तक हज़ारो मलकाने हिन्दू बन गये, उनके साथ असली राजपूतों के शादी-सम्बन्ध और ख़ान-पान भी होने लगे। राजे-महाराजे तक उनके साथ हैं।

मलकाने—तो हमें भी शुद्ध कीजिए।

स्वामीजी—अच्छी बात है। पं० दयारामजी, शुद्धि की तैयारी कीजिए और इन भाइयो को मिलाइये। मै जब तक उन लोगो से बातें करता हूँ, बहुत देर से बैठे है। हाँ, साहब, आप क्या चाहते है ?

आगत लोग—हम चमार थे, गाँव वालो के अन्धेर और अत्याचार से मुसलमान हो गये। सुना है अब आर्यसमाज और हिन्दू-महासभा के उद्योग से हिन्दुओ मे उदारता आ गई है, और उन्होने विषम व्यवहार करना छोड़ दिया है। अब चमारों को कुओ पर चढ़ने दिया जायगा और उन्हे देव-दर्शन की आज्ञा मिलेगी तथा और भी उदारतापूर्वक व्यवहार होगे।

स्वामीजी—निस्सन्देह।

आगत लोग—तो हमे फिर हिन्दू बनाइये और शुद्ध कीजिए। हमारे हृदयो मे राम-कृष्ण के प्रति पहली ही-सी भक्ति और गंगा के लिए वैसा ही अनुराग है।

स्वामीजी—उस यज्ञशाला में जाइये, पण्डित दिनेशदत्तजी सब काम करा देंगे, और आप फिर हिन्दू हो जायँगे। समय बहुत हो गया, मुझे एक व्याख्यान देना हैं। मैं जाता हूँ, अब बाक़ी लोगो की बात पं० प्रियदर्शनजी सुनेंगे।

(स्वामीजी जाते हैं)

प्रियदर्शनजी—(तीसरे समुदाय से) आप कौन लोग है ?

समुदाय—हम चमार है। जब से हिन्दू-महासभा हुई है, हमने मदिरा-मांस का सेवन छोड़ दिया है, शुद्धतापूर्वक रहते है। महनत करते है और ईमानदारी से पेट भरते है। हमे भी कुओ पर चढ़ने, सभाओ मे एक

फर्श पर बैठने और मन्दिरो मे दर्शन करने की आज्ञा दी जाय।

प्रियदर्शनजी—पहले ही दे दी गई। अब आप लोग सब काम कीजिये, कोई विरोध न करेगा। मुसलमान और ईसाइयो की बात न मानिये।

समुदाय—शायद ऊँची कौम के लोग हमे ऐसा न करने दें।

प्रियदर्शनजी—हिन्दू-महासभा मे सब शामिल थे। सबने एक-मत होकर प्रस्ताव पास किये है, कोई विरोध न करेगा। आप लोग जाइये और हिन्दू-जाति के सच्चे सेवक बनिये।

× × × × × ×

स्वामीजी—कहिये, शुद्धि हो गई? यज्ञ की तैयारी ठीक है? सब लोग आ गये?

प्रियदर्शनजी—हाँ महाराज, शुद्धि का कार्य हो चुका, सब लोग मौजूद हैं, शुद्ध हुए लोग भी बैठे हैं, परन्तु चमार भाइयों की प्रतीक्षा है, वे भी आते होंगे।

चमार लोग—आगये, महाराज! आगये।

स्वामीजी—अच्छा, पहले सब लोग मिलकर ईश्वर-प्रार्थना करें, फिर हवन शुरू होगा।

प्रियदर्शनजी—(स्वामीजी से) महाराज! तो अब अग्न्याधान किया जाय?

स्वामीजी—हाँ, पूछने की क्या बात है? यथाविधि सब कार्य करते जाइये।

[बड़े समारोह से यह बड़ा यज्ञ हुआ और यज्ञ की समाप्ति पर 'संगच्छध्वं संवदध्व' मन्त्र का पाठ हुआ और एक भजन के बाद समस्त कार्यवाही समाप्त की गई।]

'करमफोड़ कम्बख्तराय'

१

पढ़ कर अङ्गरेज़ी भरपूर ।
शिखा-सूत्र कर डाले दूर ॥
हिन्दूपन का मेंट निशान ।
बन बैठा कोरा कृष्टान ॥

२

टूटी कमर झुक गये कंध ।
हुआ तीन चौथाई अंध ॥
सूखा पेट सिकुड़ कर आँत ।
पिचके गाल चमकते दाँत ॥

३

'कैमिष्ट्री'[1] सब डाली घोट ।
'साइन्सों'[2] को गया सपोट ॥
पका न पाया रोटी दाल ।
क्रिया-कुशलता का यह हाल ॥

१—रसायन शास्त्र, २ - विज्ञान।

४

'अर्थ-शास्त्र' का हूँ आचार्य ।
फिरूँ खोजता सेवा-कार्य ॥
बन जाऊँ दासों का दास ।
दे दे कोई रुपे पचास ॥

५

'हिष्ट्री[1]' चाट भखा 'भूगोल' ।
पर, इनका कुछ मिला न मोल ॥
याद रही है बस यह बात—
"हिन्दू थे वहशी बदज़ात" ॥

६

'रेखा', 'अङ्क', 'बीज' से विज्ञ ।
कहलाऊँ प्रसिद्ध गणितज्ञ ॥
तो भी बनियाँ करै कमाल ।
ठगे, न तोले पूरा माल ॥

७

पाने को पूंजी की 'पर्स[2]' ।
पढ़ डाली सारी 'कौमर्स[3]' ॥
'बुककीपिंग[4]' का बूंका मार ।
हुआ न मेरा बेड़ा पार ॥

१—इतिहास, २—थैली, ३—वाणिज्य विद्या, ४—अंग्रेजी वही-खाता ।

८

मुण्डी पढ़े करे आनन्द।
बैठे लिखें लगाय मसन्द॥
पर, मैं हूँ बिलकुल बेकार।
आफ़िस मिले न साहूकार॥

९

बना 'डाक्टर' आया जोश।
भर दूँगा सम्पति से कोश॥
पर 'पेशेंट'[१] न आवें पास।
कह-कह मुझको 'ख़ब्त हवास'॥

१०

'टीचर[२]' बना मनाया हर्ष।
ज्यों त्यों काटा पहला वर्ष॥
छात्र पढ़ाये करके टेक।
सौ में पास हुआ बस एक॥

११

लेकर कर्ज किया व्यौपार।
बेचे बिस्कुट, सेब, अनार॥
किये न लोगों ने 'पेमेंट[३]'।
घाटा सहा 'सेंट पर सेंट[४]'॥

१—रोगी, २—अध्यापक, ३—भुगतान, ४—सौ फ़ीसदी।

१२

अख़बारों की उन्नति देख।
लिखने लगा लेख पर लेख॥
छपा न कोई भी कम्बख़्त।
हैं 'एडीटर' ऐसे सख़्त॥

१३

'प्रीचर'-'प्रीस्ट'[1] बना मन मार।
काटे मास तीन या चार॥
करता रहा 'गौड'[2]-गुणगान।
गाते-गाते थकी ज़बान॥

१४

मिलता नहीं कहीं कुछ काम।
पास नहीं है एक छदाम॥
ऐसे कुसमय में करतार।
सुन ले नीचे लिखी पुकार—

१५

"लीडर बनूँ, फिरूँ स्वच्छन्द।
होहि द्वार दुःखों के बन्द।
स्वार्थ और परमार्थ पसार।
करता रहूँ देश उद्धार॥

१—व्याख्याता, पुरोहित, २—परमेश्वर।

बुड्ढे का ब्याह

प्रथम अङ्क

पहला दृश्य

स्थान–पतितपुरा

लम्पटलाल—सच समझना भाई, दुर्मतिदेव! बड़ा बुरा समय आ गया! चारो ओर से कर्ज ने मुझे कस लिया है, तक़ाजो के मारे नाक मे दम है, शर्म से गड़ा जाता हूँ, और आफतो से मरा जाता हूँ।

दुर्मतिदेव—हाँ सेठजी, इसमे क्या सन्देह है, आपका घराना कोई मामूली था क्या? इस चौखट पर ऐसे-ऐसे काम हो चुके है कि जिन्हे दुनिया याद करती रहेगी। लेना-देना तो लगा ही रहता है। परमात्मा की कृपा से आप शीघ्र ही उऋण हो जायेंगे और फिर उसी तरह मौज उडेगी।

लम्पटलाल—क्या बताऊँ महाराज! बड़ी मुसीबत है, लड़के छोटे-छोटे हैं। अब लडकी भी विवाह योग्य हो गई, उसकी फिकर अलग सताये डालती है। आखिर विवाह-शादी के लिये भी तो रुपयो की आवश्यकता होगी।

दुर्मतिदेव—सब भगवान् भला करेगा। आपके लड़के बड़े हुए जाते हैं, जायदाद न रही, न सही। आफत आने पर रिश्तेदारो से सहायता लेकर काम चला लेते हैं। आप भी ऐसा ही कीजिए, क़र्ज चुक जायगा।

लम्पटलाल—आपद्धर्म मे सब कुछ कर लेना पडता है। मगर मेरा तो ऐसा कोई रिश्तेदार है भी नही जो इस आड़े वक्त मे सहायता दे सके।

दुर्मतिदेव—लडको के सम्बन्ध अच्छी जगह कर लो, खूब दहेज आवेगा और काम बन जायगा।

लम्पटलाल—महाराज, आप भी कैसी बाते करते हैं। भला एक कगाल के घर कौन अपनी लड़की व्याह देगा! सो भी वैश्य-जाति में, और वह भी हमारे यहाँ?

दुर्मतिदेव—"सो भी वैश्य जाति मे" यह क्या कहा? क्या बनियो में विवाह नही होते?

लम्पटलाल—होते क्यो नहीं? पर हम जैसे गरीब क़र्जदारों के यहाँ नहीं, जिनके पास न गहना है न कपड़ा।

दुर्मतिदेव—नहीं, सेठजी! तुम्हारे लड़के तो बारह-बारह चौदह-चौदह बरस के ही हैं, पर हमने तो हिन्दू जाति में बूढो तक के विवाह होते देखे हैं।

लम्पटलाल—भाई वे बेटी वाले को रुपये गिनाते हैं और शादी कराते हैं। मेरे पास धन होता तो रोना ही क्या था। फिर तो बीसियो नाइयो के टट्टुए मेरे मकान के मैदान मे हिनहिनाते नजर आते।

दुर्मतिदेव—अच्छा, मै समझ गया, ठीक है! तुम और सब बातें छोड कर पहले चतुर चम्पा का विवाह करो। फिर इस हवेली मे रुपयों की कमी न रहेगी। बस और सब विचार त्याग दो।

लम्पटलाल—हे भगवान्, ऐसा कौन अमीर अन्धा होगा जो इस टूटी झोंपडी में आ कर अपना मोहर उतरवायेगा और मुझे मालामाल बनायेगा।

दुर्मतिदेव—इसका प्रवन्ध मैं करा दूंगा आप निश्चिन्त रहिए और अब सो जाइये।

लम्पटलाल—अच्छी बात है।

(दोनो जाते हैं)

दूसरा दृश्य

स्थान-निकृष्टनगरी

द्रव्यदास—(हाथ मे चिट्ठी लेकर) हाय; ग़ज़व हो गया, संकट का सागर उमड़ पड़ा, आसमान से अङ्गारे बरसने लगे, धरती काँप उठी ! ६५ साल की उमर मे सातवाँ विवाह किया था सो 'वह' भी मर गई !!! भगवान् ! अब मैं किसका होकर रहूंगा और कौन का पति कहलाऊँगा ? हाय ! मेरा सत्यानाश हो गया ! रे—हाय ! मैं किसी काम का न रहा रे—राम—अब ये धन-दौलत किस काम आवेगी—रे—राम !!!
(रोता है)—

माधू मुनीम—अजी, सेठजी ! इतने क्यो घबराते हो, बिगड़ा घर फिर बस जायगा, धीरज से काम लो, सब्र रक्खो। ऐसी भी क्या व्याकुलता !

भोदूभक्त—लाला द्रव्यदास, संसार की गति ऐसी ही है। पुरानी पैर की जूती जाती है और नई आती है। भरे रहे आपके भण्डार और चाहिए ख़र्च करने को रुपया ! बस मामला ज्यो का त्यो हो जायगा।

निदुरिया नाई—सेठजी, अहन रोइबिनका का काम। हमारे महल्लासां एक पण्डित दुर्मतिदेव रहन करिन तौन सब काम कर दीन। कहौ तो तौन बोलाय लाईन।

मोधू मुनीम—न मानेगारे-निदुरिया। जिस समय सेठानी बीमार थीं और रिजर्वगाड़ी मे सोलन भेजी गई थी तभी हमने अगली आपत्ति सोच कर सब काम ठीक कर लिया था।

भोंदूभक्त—और क्या! मुनीमजी बड़े चतुर चूडामणि हैं। इन्हे अक्ल की आग और बुद्धि की बारूद समझना चाहिए।

द्रव्यदास—(आँसू पोंछ कर) अच्छा तो कोई है लडकी? मुनीमजी जल्द उद्योग करो, रुपये की चिन्ता मत करना, जो चाहो सो उठाना।

मोधू मुनीम—हाँ-हाँ सेठजी, आप धीरज धरिये और सेठानी जी के क्रिया करम से फारिग हो लीजिए-सब काम हो जायँगे। जाइये, रोटी खाइये और पानी पीजिये। ओरे निदुरिया नाई—सेठजी को न्हिलाने के लिए ताजी पानी ला और पूजा का सामान रख।

निदुरिया—बहुत अच्छा, मुनीमजी!

(सब जाते हैं)

तीसरा दृश्य

स्थान-मुनीमजी का मकान

(निकृष्टनगरी)

अनजान आदमी—(जोर से पुकारता है) मोधू मुनीम मकान में हैं क्या—मोधू मुनीम?

मोधू मुनीम—आया—कहिए क्या बात है? आपका नाम—

अनजान आदमी—मेरा नाम पं० दुर्मतिदेव ज्ञानसागर है।

मोधू मुनीम—प्रणाम महाराज! आपकी तो बड़ी प्रतीक्षा थी। निदुरिया को आपके पास कई बार भेजा था पर आप मकान पर मिले नहीं।

दुर्मतिदेव—हाँ, मै पतितपुरा मे पण्डिताई करने गया था। वहाँ से आज सबेरे ही आया हूँ। सुना है, दाता द्रव्यदास की इस पत्नी का भी देहान्त हो गया !

मोधू मुनीम—हाँ ! महाराज, बड़े रंज की बात है, सेठजी बहुत दुखी है।

दुर्मतिदेव—रंज और दुःख की क्या बात है, मुनीमजी ! वह बहू अपनी जान से गई, दूसरी दुलहिन उन्हे मिल जायगी। कहो हैं लाख की चौथाई गिनने को तैयार ?

मोधू मुनीम—बडी खुशी से—रुपये की क्या कमी ! और फिर इस काम के लिए। मामला पक्का कीजिए और आप भी अपनी दक्षिणा लीजिए।

दुर्मतिदेव—सब ठीक-ठाक है। पतितपुरा के लम्पटलाल की लड़की के सम्बन्ध की बात-चीत हो जायँगी। ढाई हजार रुपये मुझे देने पड़ेगे। बोलो क्या कहते हो ?

मोधू मुनीम—मंजूर ! मंजूर !! चलो पतितपुरा, दिखाओ लड़की और कराओ उसके बाप से बातें।

दुर्मतिदेव—चलिये, और कुछ रुपये भी साथ ले लीजिये।

मोधू मुनीम—ज़रा ठहरिये-हाँ चलिये-चलिये, निठुरिया नाई का इन्तजार था वह भी आ गया। चलबे जल्दी चल ! नाक पर दीया जलाकर अब घर से निकला है।

(तीनो पतितपुरा जाते हैं)

चौथा दृश्य

स्थान–निकृष्टनगरी

(सेठजी की हवेली)

द्रव्यदास—कहिये मुनीम मोधूमल जी, कुछ उद्योग किया ? भोंदूमल तो कहते थे कि मुनीम जी परसो पतितपुरा गये हैं, सो वहाँ कामयावी हुई या यो ही चले आये ?

मोधू मुनीम—सेठजी, सब काम ठीक है, इन प० दुर्मतिदेवजी ने बड़ा उद्योग किया है। लडकी देख ली गई और उसके बाप से बातचीत भी होगई। मामला १५ हज़ार पर ठहरता है—कहिए क्या कहते है ?

द्रव्यदास—अरे–उसकी उम्र क्या है ? कुछ खबसूरत भी है या यो ही—रुपये पैसे की कोई चिन्ता मत करो, पन्द्रह हजार ही सही पर शादी तो इसी शरद पूनो पर हो जाय।

दुर्मतिदेवजी—नहीं सेठ जी, शरद पूनो का विवाह, जो है ते नहीं बने हैगा। कुछ दिन पीछे देवठान पर हो जायगा।

मोधू मुनीम—देवठान ही सही।

द्रव्यदास—बहुत लम्बी बात चली गई—देवठान के अब से तीन महीने है—पर खैर–जब ही सही।

भोंदूभक्त—महाराज दुर्मतिदेवजी, अब की बार आप ऐसे घड़ी-मुहूर्त विचारें कि सेठ जी रँडुआ न हो वह भले ही . . . .

मोधू मुनीम—हाँ पण्डित जी, यही मेरी प्रार्थना है।

दुर्मतिदेव—भगवान् ने चाहा तो ऐसा ही होगा।

मोधू मुनीम—सेठजी क्या आज्ञा है ? आप कहे तो दुर्मतिदेव के साथ निठुरिया नाई को आधे रुपये ले कर पतितपुरा भेज दे ।

भोदू भक्त—और क्या ? मामला पक्का हो जाय और नेग-टेहले शुरू होने लगें ।

द्रव्यदास—हाँ-हाँ मुनीमजी, कह तो दिया । रुपये की कुछ बात नहीं, विवाह जल्दी होना चाहिये ।

मोधूमल—अच्छी बात है, भगवान् की दया से जल्द होगा । पण्डितजी, आप निठुरिया नाई को लेकर पतितपुरा जायँ और लाला लम्पटलाल से सब बातें तय कर आवें ।

दुर्मतिदेव—(कान में धीरे से) मामला तो सब ठीक ही है । सगाई-लगुन साथ-साथ आवेगीं । इन पन्द्रह हजार मे से ढाई हज़ार मैं अपने घर रख जाऊँगा ।

मोधूमल—(कान में) ढाई हज़ार मैं अपने यहाँ रक्खे लेता हूँ । (कान मे) सुनरे-निठुरिया तू भी अपनी थैली बाल-बच्चो को देता जा । लम्पटलाल को तो सिर्फ नौ हज़ार देने है न । चौका अब दे आओ और पंजा विवाह के वक्त (प्रकट) हाँ तो समझ गये न आप । मैंने जो कान में कहा है सब बातें पहले ही तय कर लेना जिससे विवाह के समय गड़बड़ी न हो ।

दुर्मतिदेव और निठुरिया—हाँ-हाँ साहब, सब बातें लो, सब ।
(जाते हैं)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—पतितपुरा का बाज़ार

(बारात की अगवानी)

मोधूमल—अबे ढोल-ताशे वालो! जरा जोर से बाजे बजाओ। क्या मुरदे की तरह हाथ चलाते हो! पीछे हटो, आगे अङ्गरेजी बाजे वाले आवेंगे।

भोदूमल—अरे डण्डे वालो! इधर आओ, सेठजी की पालकी के पास रहो। देखा, ससुर फुलवाड़ी वाले कैसे इधर उधर चल रहे है—अबे इधर आओ, जरा क़तार बाँध कर चलो।

निठुरिया नाई—मुनीमजी—जे आतिशबाज ससुर पुरुआ-पटाखे और गोलान कूँ ऐसे धड़ाके ते छुड़ाय रहिन के सेठजी उछर-उछर पड़िन—डरप रहिन।

मोधू मुनीम—अबे चल-चल, सेठजी की पालकी का पीछा न छोड़। जा उनके पास।

द्रव्यदास—(पालकी में से) अरे मोधू-मोधू, देखना, कहीं किसी बराती को तक़लीफ न होने पाये। राय बहादुर मुफ्ताराम और राजा चक्खूचरन की खूब खातिर रखना, और उन गाने वाली औरतो को भी न भूल जाना। भड़कीले भाँड़ आये कि नहीं?

मोधू और भोदू—सब आ गये! सब ठीक है, आप चिन्ता न करे।

द्रव्यदास—हाँ, तुम जानो तुम्हारा काम। देखना, किसी को तकलीफ न हो, मैं तो यहाँ दूल्हा बना बैठा हूँ।

दाताराम—(हाथी पर से) मुनीमजी ! मुनीमजी ! कम सुनते हो क्या ? अरे, बखेर के लिए पचास थैली और भिजवाओ, पहली सब समाप्त हो गईं ।

मुनीमजी—अच्छा, अच्छा अभी आती हैं, घबराओ मत, यह लो वे आ गये थैलीबरदार, अब खूब बखेर करो ।

स्वागतसिंह—बस-बस, बाजे वालो, अब यहीं रुक जाओ, बारात इसी मकान में ठहरेगी आगे कहाँ जा रहे हो ?

(सब लोग स्वागतसिंह के बताये जनवासे मे ठहर जाते है)

छठा दृश्य

स्थान—पतितपुरा का–नीतिनिवास महल्ला

(समय ६ बजे रात्रि)

धर्मवती—(अपने पति धर्मदेव से) आज तो लाला लम्पटलाल के यहाँ बड़ी भारी बारात आई, बुढ्ढे वर ने खूब खाक उड़ाई, बड़े बाजे बजे और धड़ाके की धूमधाम हुई । शर्म नहीं रही इस पापी को ! राम ! राम !! रुपये गिन कर बेटी बुढ्ढे को ब्याह दी ! भाड़ में झोंक दी !! न जाने इस नीच का कैसे भला होगा ?

धर्मदेव—अरे इस लम्पट पापी का नाम मत लो, जिस समय उस बुढ्ढे खुर्राट वरना को बारात के साथ पालकी मे बैठे देखा, तो लोग लम्पट को ऊकने-थूकने लगे । लानत के मारे उसका नाक में दम कर दिया ।

धर्मवती—अजी, उस बेजोड़ बूढ़े वरना को मैंने भी देखा था और भी सैकड़ो स्त्रियाँ इस अघटित घटना को देख रही थी । लम्पट ने बड़ा पाप कमाया ! कंचन सी

कन्या कुरुप कौए के हवाले करदी ! राम ! राम !! कहाँ चतुर चम्पा और कहाँ ये बूढ़ा वन्दर !

सुखदा—(धर्मवती की वहिन) अजी, जीजी ! जब वह बूढा वन्दर पालकी मे वैठा, पोपला मुँह चलाता और चुन्धी आखे चमकाता था तब तो बडी ही हँसी आती थी। हाय ! हाय !! लम्पटलाल ने बडी ही नीचता की। ऐसे नराधम न जाने क्यो भू-भार बढ़ाने को आते हैं।

धर्मदेव—इस बूढ़े वन्दर को कुछ न ·· · ·· अरे रामसुख (छोटा भाई) यह शोर काहे का हुआ ? हल्ला क्यों मचा ? दौड जल्दी दौड़, पता लगाकर ला क्या वात है ?

दीनदयालु—(धर्मदेव का मित्र घवराता हुआ आता है) लालाजी गजव हो गया ! लम्पटलाल की लडकी चम्पा शरीर मे आग लगाकर मर गई ! उसकी माँ कुएँ मे गिरने को तैयार है।

धर्मदेव—(आश्चर्य से) क्यो, क्या वात हुई ?

दीनदयालु—अजी उस बूढ़े वर को देख कर सारे पुर-परिवार में शोक छा गया ! चम्पा और उसकी माँ के सकट का तो पारावार ही न रहा।

धर्मदेव—आखिर वात क्या हुई ?

दीनदयालु—वात क्या हुई ? रुपयों पर धामकधचा हो जाने से फेरे पडने मे विलम्ब हुआ, लड़ाई की नौवत आ पहुँची। चम्पा दुखी होने लगी और वह किसी जरूरत के वहाने मण्डप से दूसरे कमरे मे चली गई। वहाँ उसने अपने ऊपर मिट्टी का तेल उड़ेल कर कपड़ो में आग लगा ली और मर गई। इस दुर्घटना से नगर और

घर मे कुहराम मच रहा है ? शोक के शौले फूट निकले हैं !!

धर्मदेव—धन्य ! उस कन्या को अपने उद्धार का अन्तिम उपाय वलिदान ही सूझा । यह लम्पटलाल की लम्पटता पर लात मार कर स्वर्गवासिनी हुई, परमात्मा ऐसी विशुद्ध वालिका को अवश्य सद्गति देगा । वह तो बड़ी पुण्यशीला··· ·· ।

रामसुख—लीजिये साहब ! सारा मामला पलट गया ! विवाह के स्थान मे चम्पा की अर्थी कसी जा रही है। लम्पटलाल बेटी को नही रुपयो के लिये रो रहे हैं। "हाय-हाय !" मची हुई है । घर वालो को तो इस वुड्ढे विलौटे के विकराल रूप तथा लेने-देने की कुछ खवर भी न थी। उन्हे तो १६ वर्ष का वर बताया गया था। चम्पा भी इसी बात को सुनती रहती थी। यह तो सब लम्पट लाला की लम्पटता और दुर्मति ब्राह्मन की दुर्मति का कुफल निकला !

धर्मदेव—चलो, लम्पट के मकान पर चलें और वहाँ चल कर सब घटना देखे ।

(सब गये परन्तु घर मे "हाहाकार" होता देख उल्टे पैरों चले आये। इस समय तक बारात वापिस हो गई थी।)

सातवाँ दृश्य

स्थान—धर्मशाला

(पतितपुरा और निकृष्टनगरी के पचासों पंच बैठे पंचायत कर रहे हैं)

देवीदत्त—आशा है कि आप लोग लम्पटलाल और द्रव्यदास सम्बन्धी दुर्घटना का हाल ज्ञात कर चुके होंगे। चम्पा के बलिदान की चर्चा भी सुन ली होगी।

वेदप्रकाश—अच्छी तरह सुन चुके हैं, अब आप चम्पा की मृत्यु-वार्ता का वर्णन कर पचो को न रुलाइये, उन नीच नराधमो का नाम न लीजिये, हमारे कान पके जाते हैं और कलेजा कॉप रहा है।

सत्यदेव—अब तो इस पंचायत को यह फैसला देना चाहिए कि इस दुर्घटना से जिन-जिन पापियो का सम्बन्ध है और जिन के कारण यह हुई है उनका सदा के लिए बहिष्कार किया जाय, उनकी शकल देखने तक मे पाप समझा जाय। उनसे सब प्रकार के सम्बन्ध-विच्छेद कर दिये जायँ। सम्भव हो तो इन नीचो के पुतले बना बना कर जलाये जायँ, इन्हे नीचातिनीच समझा जाय। कहिए है मंजूर ?

पंचायत—"मजूर, मजूर, मंजूर" ऐसे पापियो का यही हाल होना चाहिये।

देवीदत्त—नहीं साहब, इतने से काम न चलेगा। आगे ऐसी दुर्घटनाये न हो इसके लिए भी कुछ प्रबन्ध सोचना चाहिए।

वीरभद्र—प्रबन्ध क्या ? इस समय यहाँ सब जातियो से सम्बन्ध रखने वाले, पचास गाँवो के हजारो आदमी बैठे हैं अगर सब की राय हो तो इस समय यह तय किया जाय कि भविष्य मे बाल विवाह तथा वृद्ध विवाह करने वालो का कोई साथ न दे, ऐसी शादियो में शामिल होना पाप समझा जाय।

चन्द्रसेन—नहीं साहब, इतना और कीजिये कि अगर यह पता लग जाय कि इस विवाह के लिये रुपये लिये हैं तो उस मे भी कोई शरीक न हो।

वीरभद्र—हाँ, यह बात भी मानने लायक है, कहिये साहब आप लोग क्या कहते है। है प्रस्ताव स्वीकार ?

सब लोग—हाथ उठाकर—"मंजूर, मजूर, मंजूर।"

देवीदत्त—अगर इन पचास गाँवो मे से कोई आदमी ऐसी शादियो मे शामिल हुआ तो उस पर १०१) जुरमाना किया जायगा।

सब लोग—"ज़रूर किया जाय, मजूर।"

चन्द्रसेन—देखिये जोश मे नहीं होश मे आकर हाथ उठाइये, कही पीछे प्रतिज्ञा-भ्रष्ट न होना पडे।

सब लोग—नही साहब, खूब समझ लिया है, ऐसे पापकाण्ड देख कर कलेजा काँपता है, भला कौन पापी होगा जो इस प्रकार के नीच कर्मों का साथ दे।

नित्यानन्द—सुनिये साहब, सुनिये, देखिये यह दीनदयालुजी क्या कहते हैं। हाँ साहब, जरा जोर से फ़रमाइये जिससे सब सुने।

दीनदयालु—आज भीमपुरा की कचहरी में बड़ा विचित्र दृश्य था। लम्पटलाल और द्रव्यदास दोनो गिरफ्तार हो गये, पुलिस ने उन्हे पकड़ कर हवालत में भेज दिया। सुना है यह सब चम्पा के बलिदान के कारण ही हुआ है। सुना है उस "विवाह" मे सहयोग देने वाले और भी कई आदमियो पर आफ़त आयेगी।

पंचराज—इसमे ताज्जुब की कोई बात नही है। जो आदमी जैसा काम करता है उसे वैसा ही फल भी मिलता है। चम्पा निर्दोष थी, उसने अपना शरीर बुड्ढे वर की सुपर्द न कर अग्नि देवता के अर्पण कर दिया! वह धन्य है। अच्छा अब सब बातें तय हो गयी, यह पंचायत समाप्त की जाती है। (सब लोग जाते है)

अगुआ की आत्म-कथा

१

वकालत का था बड़ा गुमान ।
इसी पर हो बैठा वीरान ॥
मगर यह हप्पो चली न हाय ।
बन गया मैं पूरा असहाय ॥

२

नौकरी लगी न कोई हाथ ।
बड़ा था कुनबा मेरे साथ ॥
घूमता रहा काटता काल ।
हाल सब हुआ, हाय ! बेहाल !!

३

मिला साहब से सौ-सौ बार ।
न पाया तो भी उसका पार ॥
सही घुड़की, झिड़की, फटकार ।
अन्त में गया हौसला हार ॥

४

तिजारत का भी किया बिचार ।
बिना धन कैसे हो व्यापार ?
न कोई करता था विश्वास ।
क़र्ज़ की त्याग चुका था आस ॥

५

कर रही थी महँगी रसभंग।
छिड़ी थी निर्धनता से जंग॥
किसी पर चढ़ता देख न रंग।
हुआ अब औरकाफ़िया तंग॥

६

अन्त में जगी देश की भक्ति।
मिली फिर मुझे अनोखी शक्ति॥
देश-दुर्दशा बखान-बखान।
तोड़ने लगा निराली तान॥

७

कभी साहित्य-सिन्धु का जन्तु।
कभी था धर्म-ध्वजा का तन्तु॥
बजा कर राजनीति का ढोल।
चढ़ाता रहा पोल पर ख़ोल॥

८

बोलता था जब मैं किलकार।
मेज़ पर मचल, दुहत्थड़ मार॥
समझते थे तब सब अनजान।
"देश पर होगा यह क़ुरबान"॥

९

मगर मैं चलता था वह चाल।
न होता बाँका जिससे बाल॥
दिया उपदेश, किया आराम।
यही था बस मेरा 'प्रोग्राम'॥

१०

'लीडरी' में है हाँ आनन्द ।
इसी से है वह मुझे पसन्द ॥
प्रतिष्ठा पाता हूँ चहुँ ओर ।
मचा कर ज़ोर-ज़ोर से शोर ॥

११

मिली है, जनता रूपी गाय ।
बड़ी भोली-भाली है हाय !
दुहा करता हूँ मैं दिन-रात ।
न 'कपिला' कभी उठाती लात ॥

१२

भर गया अब मेरा भण्डार ।
हुआ सकट-सागर से पार ॥
सुखों का सिन्धु हुआ परिवार ।
किया जनता ने पुनरुद्धार ॥

१३

रेल का पहला, दूजा क्लास ।
हमारा बना प्रवासावास ॥
गाड़ियाँ-ताँगे दिये विसार ।
खरीदी बढ़िया 'मोटरकार' ॥

१४

बनाई कोठी विशद विशाल ।
सजाये सुन्दरता से 'हाल' ॥
विदेशी है सारा सामान ।
छोड़ कर खादी के कुछ थान ॥

१५

देवियाँ हैं ऐसी शौक़ीन ।
माँगती वस्त्र महीन-महीन ॥
न भाता उन्हें स्वदेशी माल ।
इसी से है यह उनका हाल ॥

१६

धार कर विमल-विदेशी 'सूट'।
डाटता हूँ 'डासन' का 'बूट' ॥
'घरेलू' है यह मेरा वेश ।
न इस पर उचित विवाद विशेष॥

१७

मगर है 'पब्लिक लाइफ़' और ।
न उसमें कही ठेस को ठौर ॥
पहन कर खद्दर की पोशाक ।
जमाता हूँ जनता पर धाक ॥

१८

'छींक दूं' या लूँ कभी 'डकार' ।
खटक जाता है, त्योंही तार ॥
जियें जुग-जुग देसी अख़बार ।
कर रहे मेरा यश-विस्तार ॥

१९

किया मैंने अपना उद्धार ।
कमाकर 'कीर्ति' और 'कलदार'॥
इसी विधि करे अगर सब देश ।
न बाक़ी रहे क्लेश का लेश ॥

२०

जाति को करना है स्वाधीन।
लिखो तब, लेख नवीन-नवीन॥
शब्द-शर और कोप की 'तोप'।
इन्हीं से है, उन्नति की 'होप'[1]॥

२१

हाथ में ले लो क़लम-कुठार।
निकलने दो मुँह से फुतकार॥
मारना मत 'कर्तब' की डींग।
नहीं तो निकल जायगी मींग॥

---

१ आशा।

काव्य-कण्टक का कोप

(१)

मुझे क्यों कवियों का सरताज।
न कहते सम्पादक महाराज॥
सुखा कर सेरों अपना खून।
भेजता नये-नये मज़मून॥

(२)

न छापा तुमने अब तक एक।
भला यह कैसी अनुचित टेक॥
अगर तुम आओ मेरे पास।
दिखा दूँ, अपना मैं अभ्यास॥

(३)

अभी बीते हैं दो रविवार।
लिखे हैं पोथे जिन में चार॥
किलर्की करते इतना काम—
करूँ; पर हाय! न होता नाम॥

(४)

कभी भारत-दुर्दशा निहार।
मुझे होता है दुःख अपार॥
कभी कामिनि किङ्किणि झनकार।
श्रवण कर, मार* मारता मार॥

* कामदेव।

(५)

कभी करुणा का बहता स्रोत।
कभी कटुता का चलता पोत॥
कभी मृदुता की तरल तरङ्ग।
उमड़ती कभी भक्ति की गङ्ग॥

(६)

हृदय का चित्र भाव उद्‌गार।
सभी का कविता है आधार॥
हुए जब अति प्रसन्न भगवान्।
तभी की कविता शक्ति प्रदान॥

(७)

वन गया मैं कविता का कूप।
फ़टकने लगा शब्द, ले सूप॥
नाप डाले ले गज सब छन्द।
न तो भी हुआ काफ़िया वन्द॥

(८)

न सहती अलङ्कार का भार।
न देखी रस की सुन्दर धार॥
भाड़ में झुकी भाव-भरमार।
सादगी है कविता का हार॥

(९)

व्याकरण-विल्ले का सिर फोड़।
पिंगली-पिल्ले का धड़ तोड़॥
जानकारी की जान मरोड़।
कुदकती है कविता पर होड़॥

(१०)

पढ़ेंगे एक वार यदि आप।
कहेंगे-"है यह व्यर्थ प्रलाप"॥
"न भाषा शुद्ध न भाव-प्रधान"।
यही है कविता की पहँचान॥

(११)

नष्ट हो कविता का शृंगार।
भ्रष्ट हो चाहे सारा सार॥
छापना कर लो, पर, मंजूर।
अर्ज है, यह हुजूर पुरनूर॥

(१२)

नाम का मोटा छापा छाप।
दिखाना मेरा काव्य-कलाप॥
भेजना अङ्क अमूल्य पचास।
पठाने हैं मित्रों के पास॥

सजीव रोगों के अजीव नुसख़े !!!

आजकल शारीरिक रोगो के साथ और भी कितने ही तरह के रोग बढ़ रहे हैं, जिनकी चिकित्सा न होने से देश की बड़ी हानि होने की सम्भावना है। इसी विचार से श्रीहत—नहीं नहीं—श्रीयुत बाबा अविद्यानन्दजी महाराज ने कुछ परीक्षित प्रयोग हमारे पास प्रकाशनार्थ भेजे हैं, जो यहाँ मुद्रित किये जाते हैं। आशा है, ये नुसख़े रोगियो के लिए लाभकारी सिद्ध होंगे।

लीडरतोन्माद

निदान—यह बड़ा भयंकर रोग है, इसका वेग होने पर, रोगी के दिल-दिमाग़ क़ाबू मे नहीं रहते। कभी रोगी आदमियो की भीड़ मे चीख़ता है; कभी कागज़ पर कुछ घसीट-घसीट कर डाकघर के बम्बे मे बहाता है, कभी तार बाबू को तंग करता है, और कभी सरकार के साथ जंग करता है। मरज़ ज्यादह बढ़ जाने पर कभी-कभी रोगी अपने घर, नगर से बाहर भी भाग जाता है और फिर वहाँ चीख़ता-पुकारता फिरता है।

चिकित्सा—लीडरतोन्माद के रोगी को कौन्सिल के कठघरे में बन्द कर देना चाहिये और उसे 'शोहरत' के शर्बत मे, चन्दे की चाशनी मिला कर, प्रत्येक पाँच पल के पश्चात् चटानी चाहिये। अकर्मण्यता का चूर्ण भी हितकर होगा। ऐसा करने से दस-पन्द्रह वर्ष मे उसे आराम हो जायगा। बाबा अविद्यानन्दजी इस नुसख़े की कितने ही बीमारों पर अनेक बार परीक्षा कर चुके हैं। सब नीरोग हो गये।

'ऐडिट-अड़ंग' या 'संपादन-संहार'

निदान—'एडिट-अड़ंग' अथवा 'सम्पादन-संहार' का रोगी दुनिया भर के झगड़े-बखेड़े लोगो को सुनाया करता है।' लीडर-तोन्माद' और 'व्याख्यान-व्याधि' रोगियो को पिटते देख यह बुरी तरह रो पड़ता है। कभी किसी को प्रशंसा के पुल बाँधता है, तो, कभी किसी की निन्दा की नदी बहाता है। तिल का ताड़ और ताड़ का तिल बनाने मे इसे बड़ी खुशी होती है। जब इसे जोर का दौरा होता है, तो, बस, 'सुधार-सुधार' और 'स्वराज्य-स्वराज्य' बकना शुरू कर देता है।

चिकित्सा—'सम्पादन संहार' आगन्तुक रोग है, इस लिए आयुर्वेदशास्त्र मे इसका वर्णन नही है। इसका इलाज विदेशी चिकित्सा पद्धति के अनुसार होता है। डाक्टर लोग इस रोगी को '१२४ ए' के एकुए में 'प्रिजन पिल्स' (क़ैद) या 'फाइन (जुरमाना) का फास्फोरस' मिला कर पिलाया करते हैं। कभी-कभी 'वी०पी० बहिष्कार-वटिका' का प्रयोग भी लाभदायक सिद्ध होता है।

'विकालत-व्रण'

निदान—यह मरज़ तो बहुत फैलता जाता है, छोटे-बड़े सब शहरो में इसके मरीज़ मिलते हैं। बड़ा संक्रामक रोग है। भारतीय विश्वविद्यालय लॉ लेक्चर की बारि-धारा बहा कर इस रोग को और भी बढ़ा रहे हैं। यमराज भी इस रोग को घटाने में मदद नहीं देते। विकालत व्रण का रोगी कराहता बहुत है, इसे बात-बात में मीन-मेख निकालने की बुरी आदत पड़ जाती है। बीमार लोग रोज़ चार-पाँच घन्टे के लिए क़ानूनी शफाखाने में जमा होते हैं। वहाँ एक की कराहट दूसरे को बहुत बुरी लगती है। कभी-कभी तो ये लोग क़ानूनी डाकुर के सामने खड़े-खड़े खूब कराहते, चीख़ते और चिघाड़ते हैं। मगर यह जीभो की लपालपी उसी वक्त तक

रहती है जब तक व्रण मे दर्द की शिद्दत रहती है, ज्यो ही दर्द कम हुआ त्यो ही फिर ग़ुर्राहट बन्द हो जाती है, और एक दूसरे के दर्द का शरीक बन जाता है। इन रोगियो मे एक बात खास होती है, ये लोग ख़ुद तो आपस मे तडक-भडक करते ही रहते हैं, पर दूसरे अच्छे-भले आदमियो को लडते-झगड़ते और सर पटकते देख बहुत ख़ुश होते हैं। इस विषैले व्रण के कारण अक्सर असत्य का ज्वर चढ़ आता है।

चिकित्सा—विकालत-व्रण के रोगी को महनताने के मधु मे शुकराने का शर्वत मिला कर पिलाना चाहिये। 'मवक्किल-मरहम' का फाया रखने से तो बहुत जल्द फायदा हो जाता है। साधारण व्रण के लिये 'पबलिक-पुलटिस' भी कारगर हो जाती है। देशोद्धार की ठेकेदारी मिल जाने पर भी यह रोग शान्त हो जाता है। जहाँ तक हो, लोगों को इनके इस छूत के रोग से, दूर रहना चाहिए, क्योंकि यह उड़ कर लगने वाला मरज़ है।

'कविता-कण्डु' (खाज)

निदान—यह मरज़ भी बड़ा मूजी है, इसमे फँस कर रोगी घर का रहता है न घाट का। इस बीमारी मे एक प्रकार की 'गुनवाय' सी हो जाती है। मरीज़ उठता बैठता, सोता जागता यहाँ तक कि खाने और पाख़ाने में भी 'गुन-गुन' करता रहता है। अपनी करतूत को कागज़ के टुकडो पर अङ्कित देख मुँह फाड़कर खिलखिला पड़ता है। इस रोग का जल्द इलाज करना चाहिये।

चिकित्सा—'कविता-कण्डु' के रोगी को सोने-चाँदी के पदको को पीस-कर शोहरत के शहद के साथ चटाना चाहिए। कभी-कभी प्रशंसा-पत्रो की पुड़िया देने से भी लाभ होता देखा गया है। उपाधि का अवलेह तो इस व्याधि को तुरन्त दूर कर देता है।

'व्याख्यान-व्याधि'

निदान—यह रोग बड़ा भयानक है, रोगी हर वक्त कुछ न कुछ बड़बड़ाया करता है। हुक्का, सिगरट, शराब, जुआ, चोरी आदि देख-सुन कर तो रोगी को एक दम भयङ्कर दौरा हो जाता है, जो लाख चिकित्सा करने पर भी शान्त नहीं होता।

चिकित्सा—व्याख्यान व्याधि के रोगी को 'गौरव-गिलोय' के काढ़े के साथ 'प्रशंसा-पर्पटी' खिलानी चाहिये। अकर्मण्यता का अर्क तो इस रोग के लिए बहुत ही लाभदायक है। कभी-कभी 'सर्व-श्रेष्ठता' का स्वरस भी बहुत हितकारी साबित होता है। सब औषधियाँ व्यर्थ सिद्ध होने पर, इस रोगी को '१४४' धारा की अमृत-धारा पिलानी चाहिये, बस तुरन्त आराम हो जायगा।

स्वर्ग की सीधी सड़क !!!

घूमता-फिरता मै सीधा हृषीकेश के जगलों मे जा पहुँचा। देखता क्या हूँ, एकान्त टीले पर, एक बाबाजी समाधि लगाये बैठे हैं। वे अपने ध्यान में निमग्न हैं, उन्हे कुछ भी ख़बर नहीं कि संसार मे क्या हो रहा है, और संसार मे वह है भी कि नहीं। मैं बाबाजी के पास आध घन्टे बैठा रहा। इतने ही मे, न जाने कव की लगी हुई उनकी समाधि टूटी। वावाजी ने मेरी ओर बड़ी दया-दृष्टि से देखा, मैंने चरणस्पर्शपूर्वक उन्हे प्रणाम किया। वे बोले—

'बच्चा!—तुम कौन हो?'

'महाराज!—मैं भी एक सांसारिक कीट हूँ।

'यहां कैसे आये?'

'आपके दर्शनो को, लौकिक ताप से तप कर आत्मिक शान्ति के लिए।'

'नहीं, अभी तुम इस बखेड़े में मत पड़ो, संसार का काम करो।'

'महाराज!—मेरी आत्मा बडी अशान्त रहती है, कुछ ऐसे भ्रम हैं जिनका निवारण नही होता।'

'अच्छा, बैठो, मैं अभी पानी पीकर तुम्हारी शङ्काओं का समाधान करता हूँ—

कुछ ही देर बाद बाबा विचित्रानन्दजी ने पानी पीकर मुझसे कहा—'बोलो तुम्हारी क्या क्या शङ्काएँ है, एक-एक करके कहते जाओ।'

मै—महाराज ! 'परोपकार' क्या है ?

बाबा—खूब आराम से रहना, और पाखण्ड पूर्वक स्वार्थ साधन करना ।

मै—'मुक्ति' कैसे प्राप्त होती है ?

बाबा—खूब धन कमाने से ।

मै—'स्वर्ग' कहाॅ है ?

बाबा—'सिविललाइन्स' मे और अङ्गरेजो की कोठियों मे ।

मै—'नरक' किस जगह है ?

बाबा—हिन्दुओ के घरो मे ।

मै—'धर्म' क्या है ?

बाबा—संसार की सब से सस्ती और निरर्थक वस्तु ।

मै—'धर्म' कब पालन करना चाहिये ?

बाबा—मृत्यु के समय—जीवन समाप्ति मे सिर्फ १० मिनट शेष रह जायॅ, तब ।

मै—ऋषि मुनि कौन है ?

बाबा—जिन्होंने ७५ फीसदी नम्बरो से क़ानूनी और डाक्टरी परीक्षाऍ पास की है ।

मै—सबसे अधिक सत्यवादी कौन है ?

बाबा—कवि, सम्पादक और वकील बैरिस्टर ।

मैं—मनुष्य-जीवन का उद्देश्य क्या है ?

बाबा—कमज़ोरो को सताना और बलवानो से दब जाना ।

मै—श्राद्ध किसका करना चाहिए ?

बाबा—गौरांग महाप्रभुओ का ।

मै—मर कर जीव कहाॅ जाता है ?

बाबा—धन की ढेरी पर और मोह के मन्दिर मे ।

मै—पाप किसे कहते हैं ?

बाबा—बिरादरी के विरुद्ध व्यापार को ।

मैं—बुद्धिमान कौन है ?

बाबा—जो धूर्तता से अपना काम निकाल सके।

मैं—मूर्ख की परिभाषा क्या है ?

बाबा—सीधा हो, सज्जन हो और अपने हृदय के भाव सब पर सरलता से प्रकट करदे।

मैं—शुद्धता कहाँ है ?

बाबा—व्हिस्की के प्याले और होटलों के निवाले मे।

मैं—आचार-विचार किसे कहते हैं ?

बाबा—उछल कर चौके मे जाने और धोकर लकडी जलाने को।

मैं—जीवन की सफलता किसमे है ?

बाबा—ढोंग रचने और धूम मचाने मे।

मैं—बहादुर कौन है ?

बाबा—जो अवसर आने पर जान बचा कर भागता है।

मैं—प्रतापी नरेश कौन है ?

बाबा—जो दीन प्रजा को सदैव पराधीन बनाए रक्खे।

मैं—नेता किसे कहते है ?

बाबा—जो सदैव अपने ही व्यक्तित्व का ध्यान रखता है, और अपनी ही बात चलाता है। लोकमत का तनिक भी आदर नहीं करता।

मैं—स्वराज्य कब मिलेगा ?

बाबा—जब भारत में एक भी हिन्दुस्तानी न रहेगा, सर्वत्र अङ्गरेज ही अङ्गरेज छा जायँगे।

मैं—आध्यात्मिक ज्ञान की सर्वोत्तम पोथी कौन सी है ?

बाबा—आल्हा-ऊदल के सॉग, आधुनिक रामायण और भौंगा भजनीक का 'भजन-तमंचा'।

मैं—आर्यसमाज की 'पोप-लीला' क्या है ?

बाबा—सन्ध्या-हवन, संस्कार और चोटी-जनेऊ।

मैं—वेदों को उचित आदर कहाँ दिया जाता है ?

बाबा—वैदिक यंत्रालय अजमेर के गोदाम और आर्यसमाजो की अलमारियो मे ।

मैं—इस समय वेदो की रक्षा करने वाले कौन हैं ?

बाबा—मुसलमान जिल्दसाज़ ।

मैं—वेदो का प्रचार कैसे हो सकता है ?

बाबा—आर्य-अखबारो मे नोटिस छपाने या बुकसेलरो की दूकानो से।

मै—चुनाव के समय 'वोट' किसको देना चाहिए ?

बाबा—जो ख़ूब ख़ुशामद करे और नोटों की पोट पाकिट मे पटक दे।

मैं—मिनिस्टर का सब से बड़ा गुण क्या है ?

बाबा—सरकार की चापलूसी और आत्मगौरव का अभाव ।

मैं—गुरुकुलो मे किन्हे पढ़ाना चाहिए ?

बाबा—जिनके पिता वकील, बैरिस्टर, डाकृर, एडीटर, लीडर, डिप्टीकलकृर, मुँसिफ, प्रोफैसर, सबजज और जज न हों।

मै—गुण कर्म स्वभाव से शादी किन्हे करनी चाहिए ?

बाबा—जिन्हे अपने जन्म के वर्ण से ऊँचे वर्ण की कन्या मिल सके।

मै—दान का उचित अधिकारी कौन है ?

बाबा—जो अधिक से अधिक दाता की प्रशंसा और प्रसिद्धि करने मे कुशल हो।

मै—'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का क्या अर्थ है ?

बाबा—कहना बहुत और करना कुछ नही !!!

मै—'घासलेटी साहित्य' क्या है ?

बाबा—नवयुवको के उद्धार की अमोघ औषधि।

मैं—इसका सेवन किस प्रकार किया जाता है ?

बाबा—चाकलेटी चटनी के साथ।

मैं—लोगो की पद-लोलुपता कैसे दूर हो सकती है ?

बाबा—जलसो मे सभापति की कुर्सी पर बैठने और अखबारों में प्रशसा छपाने से।

मैं—ईश्वर से भी बड़ी दुनिया मे कौन सी चीज़ है ?

बाबा—'चन्दा! चन्दा!! चन्दा!!!'

मैं—सच्ची 'कर्मवीरता' क्या है ?

बाबा—जो खतरे से खाली हो।

मैं—समाचारपत्रो का मुख्य उद्देश्य क्या होना चाहिए ?

बाबा—ग्राहक-संख्या बढाना और रुपया कमाना!

मैं 'सस्था' किसे कहते हैं ?

बाबा—बिना पूँजी की दूकान को।

मैं—यशस्वी चिकित्सक के क्या लक्षण है ?

बाबा—जो अपने जीवन में कम से कम सौ रोगियों को यमपुर पहुँचा चुका हो।

मैं—सिद्धहस्त सम्पादक किसे कहना चाहिए ?

बाबा—जिसे लेखों की चोरी करने मे जरा भी शर्म न मालूम पड़े।

मैं—म्युनिसिपल बोर्ड क्या है ?

बाबा—निकम्मे मेम्बरो का 'पिजरापोल'।

मैं—डिस्ट्रिक्ट् बोर्ड क्या है ?

बाबा—गाँवों के जमीदारो की पंचायत।

मैं—और महाराज! कौंसिल ?

बाबा—वकील-बैरिस्टरो का 'डिबेटिंग क्लब'।

मैं—किसी पुण्य-कर्म करने का सब से अच्छा अवसर कौनसा है?

बाबा—दीवानी और फौजदारी दोनो कचहरियो की तातीलें हो—तब।

मैं—लीडर लोगो का कार्यक्षेत्र कहाँ तक है ?

बाबा—जहाँ-जहाँ मोटर का पहिया आसानी से जा सके, और बढ़िया फल खाने को मिल सके।

मैं—हिन्दी-प्रचार कैसे होगा ?

बाबा—अँगरेज़ी लिखने, पढ़ने और बोलने से।

मैं—आनरेरी लोग कौन हैं ?

बाबा—जो नियत वेतन न लेकर भरपूर भत्ता वसूल करते रहते हैं।

मैं—जीवन-दान किन्हे देना चाहिए ?

बाबा—जो संसार में किसी काम के लायक़ न रहे।

मैं—छायावाद की सर्वोत्तम कविता कौनसी है ?

बाबा—जो स्वयम् लिखने वाले कवि की समझ में भी न आवे।

मैं—भारतवासियो के लिए सबसे अच्छे अस्त्र-शस्त्र क्या है ?

बाबा—सेठ साहूकारों के लिए 'पियानो' और 'हारमोनियम'। पढ़े लिखो के लिए प्रस्तावो की 'पिस्तौल' और रिज़ोल्यूशनो के 'रिवालवर'।

महाराज, आज आपने मेरी संशय-निवृत्ति करदी, अब मेरी आत्मा को परम शान्ति प्राप्त हुई है। मेरे हृदय की उद्विग्नता दूर हो गई। आप मुझे जो आदेश देंगे, अब मैं वही करूँगा। धन्य गुरुवर, धन्य! आज आपके दर्शन कर मेरे नेत्र, और उपदेश सुनकर ये कान पवित्र हुए। मैंने आपके पाद-पद्मो की पूजा कर अपने को धन्य समझा। यह सुनकर बाबा विचित्रानन्दजी बोले—'जाओ, बच्चे अब अपने घरबार की सुध लो और हमारे बताये हुए विधान द्वारा लोक-परलोक साधो। बस, तुम इस जीवन में ही मुक्त हो जाओगे, और सदेह सीधे स्वर्ग को चले जाओगे। मैंने तुम्हे क्रिया ही ऐसी बतादी है। अच्छा, अब जाओ, हम समाधि लगाते हैं।'

———

बिरादरी पर 'बम्बार्डमेंट'

हज़ार लानत ! लाख लानत !! यार ! इस बिरादरी पर करोड़ लानत ! तबाह कर दिया ! सारे मुल्क पर मुसीबत ढा दी ! फिर भी यह कम्बख्त प्लेग के कीड़ो या नौकरशाही के आतङ्क की तरह बढ़ती ही चली जाती है। पकड़ो, मारो इस चुड़ैल को बरबाद करदो। देखना, कहीं साँस चलती बाक़ी न रह जाय।

\+ + + + +

भाई, बड़े नाराज हो, आख़िर इस बिरादरी बुढ़िया ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ? इस बेचारी से क्या ख़ता बन पड़ी है, जो तुमने उसके क़तलेआम की ठान ली। कोई अपराध भी तो हो, कोई उस गरीबनी का क़सूर भी तो बताया जाय ? या यों ही पायजामे में से निकले पड़ते हो।

\+ + + + +

बस, चुप रहो, तुम्हे क्या समझावें ? तुम तो समझते ही नहीं, ख़ुदा ने इतनी अक़्ल ही नही दी। मारो, मारो, जहाँ कहीं भी बिरादरी मिले, मारो ! जरा भी रियायत या हिमायत न करो। मारो, मारो, उस चामुण्डा का चुट्टा पकड़ लो !

\+ + + + +

ख़बर नहीं है, अब हम 'जात-पॉत-तोड़कमण्डल' के सदस्य हो गये हैं। बिरादरी बिल्डिंग को बरबाद करने की क़सम खा चुके हैं, कौमियत का क़िला तोडने का बीडा उठा चुके हैं। बस, मारो, मारो इस बिरादरी-बिलौटी को मारो। इस कुलटा ने सारे मुल्क को तबाह कर दिया !

\+ + + + +

अरे यार, छोड़ो इस अनर्गल आलाप को। तुम्हारी शक्ति में हो तो मारो, मारो और जरूर बिरादरी बुढ़िया को मारो। पर, सारा जोर—सारा जोश और सारा आवेश इसी वक्त क्यो खर्च किये डालते हो? थोड़ा फिर के लिये भी रहने दो।

+ + + + +

ओ निर्बल आत्मा! तुम क्या ताना देते हो? क्या मज़ाक उड़ाते हो? याद रहे, हम 'जात-पॉत-तोड़क मण्डल' के मेम्बर है—बिरादरी की बुनियाद हिला देगे और उसे मिट्टी मे मिला देगे। समझे, तुम से भीरु भला क्या कर सकते हैं? थोड़े दिन ज्यो-त्यो जीवित रह कर केवल मर सकते है। हम बिरादरी को नष्ट करके दम लेगे। यह एक आर्यवीर की दृढ़ प्रतिज्ञा है।

+ + + + +

अच्छा, मगज क्यो चाट रहे हो, जो मन मे आवे, करना। उबले क्यो पड़ते हो, कुछ करके तो पहले दिखाओ। हॉ, ख़बर है कि नही? आज दोपहर के ग्यारह बजे से चुगी का चुनाव है। बोलो किस को वोट दोगे? किसको अपने 'वार्ड' से मेम्बर बनाओगे?

+ + + + +

किसको—यह तुमने खूब कही! भाई, मैं तो महीने भर पहले लाला लपचूलाल से वादा कर चुका हूँ। कोई लाख बके, पर, मैं तो अपना 'वोट' उन्ही को दूंगा। आर्यवीर एक बार प्रतिज्ञा करता है, बात को दो दफे नही कहता।

+ + + + +

अच्छाजी, लाला लपचूलाल को? और किसी को नहीं। मगर 'वार्ड' से तो और भी कई बड़े सुयोग्य सज्जन उम्मेदवार हैं, उन्हे अपना वोट क्यों नही देते? वह तो जनता की सेवा भी खूब करेगे। अच्छा, मै समझ गया, समझ गया, लाला लपचूलाल

आपकी बिरादरी के हैं, इसीलिये उनके लिये आप अपनी राय देंगे, इसीलिये उनसे वादा कर चुके है। पर, क्या बाबू विनायक सिंह शास्त्री से उनकी योग्यता अधिक है? भाई, योग्यता देख कर राय दो। बिरादरी पर मत मरो।

\+ + + + +

बस, भाई बहुत बातें न बको, तुम से पहले ही कह दिया कि अब हम बेहूदी बिरादरी को कभी जिन्दा न छोड़ेंगे, उसके दाँत तोडेंगे और नेत्र फोड़ेंगे। आई कहीं की बिरादरी चुडैल!!! लानत बिरादरी को! धिक्कार इस दुष्टा को!! यार! ला० लपचूलाल से तो हमने जात-पाँत तोड़क मण्डल का मेम्बर बनने से पहले ही प्रतिज्ञा करली थी। समझे कि नही?

\+ + + + +

अच्छा, तुम्हीं बताओ, तुम्ही बताओ। क्या अब मैं प्रतिज्ञा-भंग का पाप अपने मत्थे मढ़ूँ? क्या इस गुनाह-ए-अज़ीम को अपने सिर पर लूँ? एक दृढ-प्रतिज्ञ व्यक्ति प्रतिज्ञा-पालन के आगे, भला किसी की योग्यता अयोग्यता का कभी ध्यान कर सकता है?

\+ + + + +

बेशक, लाला लपचूलाल 'मण्डल की मेम्बरी' से पहले, मेरी बिरादरी के थे, पर अब नही है। अब तो, महाशय! मेरी कोई बिरादरी ही नही, मेरा किसी बिरादरी से लेशमात्र भी सम्बन्ध नही रहा? अगर मै अब लाला लपचूलाल को अपनी वोट दूँगा तो बिरादरी की वजह से नही, प्रत्युत प्रतिज्ञा-भंग दोष से बचने के कारण। एक धर्मवीर को ऐसा करना ही चाहिये! ऐसा होता ही आया है। क्यो न?

\+ + + + +

गोली मारो 'मेम्बरी' को और डेली डालो 'वोट' पर। कहो, मालूम है कि नहीं—तुम्हारे प्रमोद ने इस साल बी० ए० पास कर लिया। सैकिण्ड डिवीजन मे आया है।

\+ + + + +

वाह! वाह!! दोस्त, और हुआ सो हुआ, यह खूब सुनाई, मुबारक! मुबारक!! परमात्मा उसको चिरायु करे। अच्छा, कब खबर आई, वह तो ग्वालियर के विक्टोरिया कालेज मे पढ़ता था न—हाँ-हाँ, कल ही तो आगरा से एक मित्र का तार आया है।

\+ + + + +

वाह, यह खूब खुशखबरी सुनाई। अच्छा, अब प्रमोद का विवाह कर डालो। अब तो उसकी आयु २२ साल की हो गई, इधर बी० ए० भी हो गया। फिर क्या देर-दार है। बिरादरी की लड़की बड़ी सुशीला और सुशिक्षिता है, मगर आप तो बिरादरी को मानते ही नहीं, बिरादरी मे उसकी शादी क्यो करने लगे?

× × × × ×

भाई, सच समझना, बिरादरी का नाम सुनकर मेरी आँखो से खून के फव्वारे छुटने लगते है, उसका जिक्र आते ही क्रोध से चेहरा तमतमा उठता है। मारो, इस कम्बख्त बिरादरी को, भाइयो, जिन्दा मत छोड़ो। जहाँ मिले मारो, जब मिले मारो! आई कहीं की चुड़ैल, भुतनी, डाकनी, पिशाचनी।

× × × × ×

यार, तुम भी बडे खब्ती हो, 'जात-पाँत तोड़क मण्डल' के मेम्बर क्या बने क़यामत आगई! पूछते कुछ हैं, बकने कुछ लगते हो। जिक्र प्रमोद के विवाह का था, व्याख्यान झाड़ने लगे बिरादरी पर। ऐसा भी क्या जोश, इतना भी क्या 'रिफार्म'?

वैदिक बखेड़ा !

वाह जनाब ! वाह, ऐसी पोपलीला तो सनातनधर्म मे भी थी, अगर यही मालूम होता तो हम उधर से इधर क्यों 'धर्मबद-लौअल' करते ? बढा लिया सिर पर बालो का गुच्छा और लटका लिये गले मे तीन तार ! बस बन गये 'शिखा-सूत्रधारी !' और होगये हिन्दू !!

× × × × ×

'अरे यार ! क्या बड़बडा रहे हो ? चोटी जनेऊ पर यह क़यामत क्यो ढा रहे हो ? इन्हे जिन्दा भी छोड़ोगे कि नहीं ?' 'भाई ज़िन्दा छोड़ने की कौनसी बात है। अच्छा, तुम्हीं बताओ इनके रखने से लाभ ?—फ़ायदा ?'

× × × × ×

'फायदा क्यो नही है, ज़रा विचारो तो !' 'बस रहने दो विचार लिया, अब ये तीन तार ही हमे हमारे फर्ज़ को अदायगी बताएँगे ? इस बालो के गुच्छे से ही जिस्म की हिफाजत होगी !! क्या पोपलीला है ! कैसा ढोंग है !!'

× × × × ×

"चोटी बिजली से जिस्म की हिफाजत करती है !!!" हहहह !! 'कैसा अजीब साइन्स है ? कितनी दबंग दलील है ? "चोटी और बिजली !" वाह यार तुमने तो अक्ल का दिवाला निकाल दिया—तो गोया ईसाई-मुसलमानों पर रोज़ बिजली पड़ती रहती है, और हॉ, संन्यासियो के सिर पर भी तो चोटी नहीं होती। भला ये लोग वज्र-प्रहार से कैसे बच सकते होंगे, इसे ज़रा समझाओ।

तो गुप चुप कर ली, कहीं बारात के वक्त मत भूल जाना, आँखों पर ठीकरी न रख लेना।

× × × × ×

हँस लो; यार हँस लो! तुम भी हँस लो!! दो लड़कियाँ और तीन लड़के अभी और कुआँरे हैं। इनकी शादी हुई फिर देखना बिरादरी का कैसा सिर फोड़ता हूँ–उसके कैसे दाँत तोडता हूँ? तलाश करने पर भी तब कहीं बिरादरी का कोई निशान भी मिल जाय तो मुझसे कहना। परमात्मा ने मुझे पैदा ही इस काम के लिये किया है। मैं 'जात-पाँत तोड़क मण्डल' का मेम्बर ही इसलिये बना हूँ। बस! बिरादरी का बलिदान मेरे हाथ ही लिखा है।

विना धारण किए, न तुम आर्य्य रह सकते हो और न हिन्दू कहा सकते हो। कुछ खबर है कि नहीं ? सिद्धान्त समझते हो या योही ?

× × × × ×

हाँ-हॉ सब खबर है, सब समझते है। बाल की खाल खीच डाली है! बच्चे! हमे क्या समझाओगे ? देखो जब संध्या हवन छोड कर हम आर्य्य रह सकते हैं, वेद-शास्त्र विना पढ़े 'वैदिक' कहला सकते हैं, विरादरी मे बिचरते हुए दृढ़ सदस्य समझे जा सकते हैं, छूत-छात के उपासक होते हुए भी 'समाज-संशोधक' का सार्टीफिकट हासिल कर सकते हैं तब चोटी-जनेऊ त्यागने पर 'आर्य' या 'हिन्दू' न रह सकने की आपने खूब कही ? वाह, दोस्त! वाह! क्या कहने हैं।

× × × × ×

हो यार तुम भी बड़े मग़ज़चट! सीधी-साधी बात बताने पर भी व्याख्यान झाड़ने लगते हो। ऐसा भी क्या तर्क और इतनी भी क्या दलील। वेद-शास्त्रो को भी नहीं मानना! उनमें लिखे शिखा-सूत्र को भी न धारण करना और फिर भी 'आर्य' और आर्यसमाज के सदस्य! तुम्हारी अक्ल है कि कोल्हू की शक्ल ? तुम 'वैदिक' हो या 'तपैदिक' ?

× × × × ×

आए कहीं के वेदो के व्याख्याता और शास्त्रो के आचार्य ? मानो सब काम वेदो का पाठ करके ही करते हैं। वात बात मे वेद, खाने मे वेद, पीने में वेद, सोने में वेद, जागने में वेद, रोने में वेद, हँसने में वेद। वेद क्या ठहरे आलू का शाक हो गये। मानो विना वेद के कोई काम ही नहीं करते। विना शास्त्रो के श्वास तक नहीं लेते।

× × × × ×

तो ? समझाओगे क्या ख़ाक ?—सब पोपलीला ! सब ढोंग !! सब प्रपंच !!!"

× × × × ×

"यह लो अपना जनेऊ और वह पड़ी है चोटी ! हमे ऐसी पोपलीला से कोई सरोकार नही। इस ढोग से किसी प्रकार का वास्ता नहीं !" यार ! हो तुम भी बड़े मिराक़ी ! ऋषि दयानन्द की बात भी नही मानते ! उन्होने भी तो शिखा-सूत्र धारण करने की शिक्षा दी है।"

× × × × ×

अरे भाई, दी होगी, हमने तो ऐसी पोपलीला न कालेज के कोर्स में पढ़ी और न स्कूल की किताबो मे। यह लो 'शेक्सपीयर' के ड्रामे और वह पड़े है 'बेकन' के निबन्ध ! अगर इनमे कहीं भी चोटी-जनेऊ निकाल दो तो तुम्हारे चेले बन जायँ। आज ही से बालो का गट्ठर सिर पर लादे फिरें और अभी से बिड़ला मिल का सूत सारे शरीर से लपेटना शुरू करदें।

× × × × ×

हॉ, लिखदी होगी स्वामीजी ने भूल से यह पोपलीला ! या जोड़ दिया होगा 'स्वार्थी' पण्डितो ने अपनी ओर से यह प्रसग ! अगर इसे ठीक भी मानलें तब भी तो स्वामीजी साफ-साफ कह गये है कि "वैयक्तिक कार्यों मे प्रत्येक जन स्वतन्त्र है, और सत्य को ग्रहण करने तथा असत्य को त्यागने के लिए सदैव सब को उद्यत रहना चाहिए।" सो हम उद्यत है, और जनेऊ-चोटी व्यक्तिगत कार्य होने से हम उन्हें धारण करने या न करने मे स्वतन्त्र हैं।

× × × × ×

अरे यार ! तुमने 'मिल्टन' और 'शेक्सपीयर' क्या पढ़े सारा दिमाग ही ख़ाली कर डाला ! कर्म-धर्म को ही जवाब दे दिया !! ऐसी भी क्या तार्किकता, इतना भी क्या शुष्कवाद ? 'चोटी-जनेऊ'

हाँ, एक बात इनसे भी बढ़ कर है, वेद-शास्त्रो से भी ऊँची है, धर्म से भी आगे है, उसे भी सुन लो, वह है–'चन्दा'। अगर चन्दा देते रहे तो फिर सारे बन्धनो से उसी प्रकार मुक्त हो जाओगे जिस प्रकार गयाजी मे पिण्ड दान देने से हिन्दू श्राद्धादिक के बखेडे से बच जाते हैं।

× × × ×

भाई, वेद-शास्त्र और ऋषि-मुनि तो स्मरण मात्र से ही प्रसन्न हो जाते हैं, रहा 'समाज' सो उसकी आँखे चन्दे की चाँदनी से चौंधिया दो। बस फिर न कोई किसी की चोटी टटोलेगा और न कोई किसी के गले मे हाथ डालेगा। सब ख़ुश हो जायँगे, यह भी ख़ुश और वह भी ख़ुश। मन्त्री ख़ुश उपमन्त्री ख़ुश और सभापति साहब ख़ुश!! बाक़ी रही न कुछ हुरा-फुरा!!!

अच्छा, बताओ तुम्हारी कमीज के कफो और बटनो का किस वेद मे वर्णन है ? फौण्टेनपेन रखना किस शास्त्र मे लिखा है ? फैल्टकैप कौनसी स्मृति के अनुसार धारण करते हो ? मोटर मे सवारी करने का कौनसे ऋषि ने आदेश दिया था ? पतलून का कहाँ विधान है ? बोलो, बताओ, चुप क्यो हो ?

× × × × ×

किसी ऋषि ने नही, किसी वेद ने नहीं, किसी शास्त्र ने नही, फिर यह सब वेद-विरुद्ध कर्म हुए या नही ? अब तुम ही बताओ तुम 'आर्य' हो या और कुछ । वैदिक हो या 'तपैदिक़' ?

× × × × ×

जब आप ऐसे अवैदिक कृत्य करके भी 'आर्य' रह सकते हैं, तो, चोटी-जनेऊ त्याग कर हम क्या आर्य-समाज के सदस्य नही रह सकते ?—भाई फर्क कुछ भी नही है, हम लिखे को नहीं मानते, तुम बिना लिखे को करते हो । क्रियाएँ दो सही, परन्तु परिणाम एक है । बोलो, समझे कि नही ? आई आपकी ओंधी अक्ल मे कि नहीं ?

× × × × ×

भाई, सच समझना, तुम इतने बूढ़े हो गये पर अभी वैदिकता का तत्व तुम्हारी समझ मे न आया, लो सुनो, हम समझाते है, कान खोल कर सुन लो । देखो, वेदो के नाम लेते रहो और ऋषियों का गुणगान करते रहो । बस, फिर चाहे कुछ करो या न करो, चोटी रक्खो या न रक्खो, हवन करो या न करो, संध्या के लिये भी कुछ-कुछ ऐसा ही समझो । मगर वेदों की गवाही और ऋषियो की दुहाई न भूलो । बस, बने बनाये वैदिक और पके पकाए आर्य हो । धर्म की सड़क पर दौड़े चले जाओगे, कोई रोकने टोकने वाला कहीं नही मिलेगा ।

× × × × ×

अरे भाई ! तुम्हे सम्पादकीय श्रेष्ठता क्या समझाई, जान को आ गये, कान कतरने लगे। भला ऐसा भी क्या शौक़ ! इतनी भी क्या उजलत !! याद है, जहाँ गुल होते हैं वहाँ ख़ार भी होते है। जहाँ नेकी है, वहाँ बदी भी है। जहाँ गुण हैं वहाँ दोषों की भी कमी नहीं दिखाई देगी। तुमने सम्पादकी के लिये मुँह तो वा दिया—मन तो चला दिया, मगर '१५३ अ' की भी कुछ ख़बर है ? इस 'हौआ' की भी कभी याद आई है ?

\+ \+ \+ \+

"१५३-'अ' का हौआ कैसा ?"—"हौआ यही कि किसी दिन लिख दिया कुछ आँय-बाँय-शाँय और बिगड़ गया दिमाग़ तो बस हो गये 'गुलटंग !' चलो जेल को, और पीसो चक्की ! बटो रस्सी और कूटो धान ! पता है बच्चू ! उस वक्त तुम्हारी सारी कुड़मधूँ बोल जायगी। सारी फुलावट फूले लिफ़ाफ़े की तरह फटाक से फिट्ट हो जायगी और सम्पादकी की चलती गाड़ी भर्र से अटक जायगी। तब क्या करोगे ? उस वक्त कैसी गुजरेगी ? कुछ है ख़बर ?"

\+ \+ \+ \+

सो क्या बात है ? इसमें क्या हरज है ? हमे महाकवि श्रीशङ्करजी की कविता की एक टाँग याद रह गई है, सुनिये—

"पाय करनी का फल जेल मे गये तो भट्ट !
तोल घट जायगी पै मोल बढ़ जायगो।"

जेल जाकर शरीर भले ही कुछ कम हो जाय, तोल भले ही कुछ घट जाय, पर मोल बिना बढे न रहेगा। बिना जेल-यात्रा के तो कोई सम्पादक होता ही नहीं। हज़रत ! मोल के आगे तोल को कौन पूछता है ? तोल कम और मोल ज्यादा इससे बढ़िया दूसरी कौनसी बात होगी ?

\+ \+ \+ \+

खड़ियल सम्पादक

भाई, सचमुच जो मज़ा 'सम्पादकी' मे है, वह संसार के साम्राज्य मे नही है। बैठ गये कुर्सी पर और चलाने लगे कलम। गवर्नर हो या वायसराय, बादशाह हो या फक़ीर, जज हो या बैरिस्टर, डिपुटी हो या कलक्टर—सब पर सम्पादको की टेढ़ी-तिरछी, उलटी-सीधी, ओड़ी-भौड़ी कलम चलती ही रहती है।

\+ + + +

कोरी 'क़लम घिसौअल' हो सो नहीं, घर मे चिलकइयों के पहिये भी ख़ूब घूमते है। स्वार्थ का स्वार्थ और 'परमार्थ' का 'परमार्थ !' चुपड़ी और दो दो !! या यो कह लीजिये कि 'खाना और गुर्राना !' हथेली गरम करना, पाकिट भरना और लोगो को खरी-खोटी सुनाना !!! सचमुच ऐसी सुख-मूल 'सम्पादकी' जिस जन्तु की क़िस्मत में बदी हो, वह धन्य है, हज़ार बार धन्य है॥ और लाख बार धन्य है॥!

\+ + + +

यार ! ज्यो-ज्यों तुम 'सम्पादकी' की स्तुति करते जाते हो, त्यों ही त्यो मेरे सूखे मुँह मे पानी भरता आता है, उत्सुकता का दरिया उमड़ता जाता है। भाई, जिस प्रकार बने—जैसे भी हो सके, मुझे इस सम्पादकीय कुर्सी पर बिठा दो। मै तुम्हारा जन्म-भर गुणगान करूँगा—मरने पर मेरी चिता से भी कृतज्ञता की लपलपाती लपटे निकलेगी। तनुख़ाह ख़ूब मिलती है न, ख़ूब। ठीक-ठीक बताना।

\+ + + +

काट लेना और अपने अखबार मे छपा देना—इसमें जरा भी सकोच न करना, बस, बन गये सम्पादक !! कहो, बने कि नही ?

+ + + +

'ओ हो ! इसलिए 'क़ैंची' और 'पैंसिल !!!' धन्य है, यह तो आपने सम्पादकीय सदन मे प्रवेश करने की 'रायल-रोड' बतादी ! वाह ! इसके लिये मेरा मुँह आपके चरण चूमना चाहता है। जरा कदम बढ़ाइये, मै 'बोसा लूँ।'

+ + + +

हाँ, अभी पूरी बात तो सुनलो, तारीफ के पुल पीछे बाँधना। देखो, जिस अखबार या किताब से कोई बात अपने अखबार मे छापनी हो तो उसका नाम न देना—लेखक का जिक्र न आने देना—

+ + + +

"नाम दे दिया तो ... "—"तो क्या तुम्हारा सिर ! जब दूसरे का नाम ही छाप दिया तो तुम्हारी उसमें क्या ख़ाक कारगुजारी रही ! तुम्हे उसके लिये रक्खेगा कौन और देगा क्या ?"

+ + + +

ओ हो, यह तो आपने ऐसी सुन्दर सुविधि बताई कि मैं मुहूर्त्तमात्र में, सकल शास्त्र-सागर, पूर्ण पुराण-पुष्कर और विश्व-वेद-वारिधि बन सकता हूँ। पोलिटिकल प्रांगण का पहलवान और साहित्य-समर का महारथी पद पा लेना तो, अब मेरे लिये साधारण-सी बात हो गई। धन्य, गुरुदेव ! धन्य ! धन्य, आचार्य, धन्य !

+ + + +

अच्छा तो, लीजिये अब जाता हूँ और सम्पादकीय जगत् में क्रान्ति करता हूँ ! अब आप 'केशव', 'बिहारी', 'भूषण', 'तुलसी' की टक्कर की कविताऐं मेरे पत्र मे शीघ्र ही देखेंगे। 'रवीन्द्रनाथ

"जेल से छूटने के दिन, जिस समय, मेरा जय्यद जुलूस निकलेगा उस दिन बस, आनन्द की गंगा उमड़ पड़ेगी। मेरी देश-सेवा के वखान से वायुमण्डल विलोडित हो जायगा।"

× × × ×

अच्छा तो, लो! सम्पादकी के लिये तैयार हो जाओ, जब तुम्हारी ऐसी असीम अभिलाषा है, तो उसे रोक कौन सकता है? बस! उठो-उठो, जाओ बाज़ार को और लाओ रंगीन पैंसिल और छोटी क़ैंची! बस, मब काम हो जायगा—किसी अख़बार मे भी जगह मिल ही जायगी।

× × × ×

"तो क्या सम्पादकी के लिये मुझे कुछ पढ़ना पड़ेगा, तय्यारी करनी होगी, पुस्तको के पन्ने उलटने-पलटने पड़ेगे?"

× × × ×

यार! तुम तो बड़े मगजचट्ट हो, फिजूल बातें बनाकर जान परेशान करते हो। यह लो 'रंगीन पैंसिल' और वह उठालो 'छोटी क़ैंची।' बस बन गये सम्पादक और हो गये 'एडीटर'।

× × × ×

"अच्छाजी. 'क़ैंची' और 'पैंसिल' ने मुझे सम्पादक कैसे बना दिया?—इनमे क्या करामात है? जरा समझाइये तो सही! बतलाइये तो सही!!"

× × × ×

"कहा न तुम बड़े 'मग़ज़चट' हो—पल्ले सिरे के बातून और अव्वल नम्बर के कुतर्की हो।"

× × × ×

"अरे, मामूली सी बात है, उसे सुनलो और दिल पर उसकी तसवीर खीच लो। देखो, जिस किताब या पत्र में तुम्हें कोई अच्छी बात दिखाई दे उसी पर सुर्ख़ निशान लगा देना, क़ैंची से

अड़ियल उपदेशक

अच्छा, आप सभा के वैतनिक उपदेशक है, हूँ—तो, आप वैतनिक हैं ! अच्छा, आपको तनुख़ाह मिलती है !! बहुत ठीक, समाज-मन्दिर मे ठहरिये, वहीं आराम कीजिए, मुझे अब और काम करने हैं ।

— — — —

मन्त्रीजी, समाज-मन्दिर मे तो कन्या-पाठशाला होती है, वहाँ से तो मै आया ही हूँ, चपरासी ने कहा—'स्थान नहीं है ।' आपके यहाँ ही ठहर जाऊँगा, दो दिन तो रहना ही है ।

— — — —

नहीं जी, आप जाइये तो सही, चपरासी खुद अपनी कोठरी मे आपको ठहरावेगा । लाइये, मैं चिट्ठी लिखे देता हूँ । वही आपके भोजन का प्रबन्ध भी कर देगा ।

— — — —

अच्छा, वही कर देगा, जो आज्ञा, (खुर्जी कंधे पर लाद कर और बिस्तर बगल मे दबा कर) वहीं जाते हैं, हमे तो कहीं पड़ना । हाँ, प्रचार का प्रबन्ध और कर दीजिये ।

— — — —

आपने सुना नहीं, मुझे काम है, मै बाहर जा रहा हूँ, शाम तक लौटूंगा । रात के नौ बजे के लगभग प्रचार-विचार भी देखा जायगा । अच्छा अब देर होती है । नमस्ते ।

— — — —

चपरासीजी, नमस्ते । लो, भाई, फिर तुम्हारे पास ही आना पड़ा । मन्त्रीजी ने कहा है—'वहीं ठहरो' ।

— — — —

ठाकुर' से बढ़िया शायरी हो तो मानिये नहीं तो नहीं—देशबन्धु और लोकमान्य, लालाजी और बनर्जी, गोखले और दादाभाई सब की आत्मायें अब मेरी पैंसिल के प्रभाव और कतरनी की करामात से, समाचारपत्रों के कालमो मे कूदने लगेंगी। कूदेंगी वह और बड़ाई मिलेगी मुझे। क्या खूब !

\+ + + +

गुरुदेव ! आपने विधि ही ऐसी बता दी, विधान ही ऐसा कर दिया, बहुत अच्छा, आज्ञा दीजिए, जाता हूँ, आपके आदेश का पालन करूँ गा। अपने सुशील शिष्य की कमर पर सदैव हित का हाथ रक्खे रहिये—अच्छा, प्रणाम !

\+ + + +

हाँ जाओ, भगवान् तुम्हारा भला करे और तुम अभी से सफल सम्पादक बन जाओ।

उपदेशकजी, यहाँ तो साढ़े तीन आने पैसे एक ख़ुराक मे ख़र्च करना अन्तरंग ने पास किया हुआ है। कलाक़न्द और रबड़ी अपने पास से मँगाइये या मन्त्रीजी के घर जाइये। आप कहे तो पूड़ियाँ तो मैं लाये देता हूँ।

— — — —

अच्छा जी! सिर्फ साढे तीन आने? फिर कैसे काम चलेगा? यहाँ सभासदो के घर आतिथ्य का नियम नही है। कैसी बुरी बात है! यह तो बड़ा अनुचित है। ख़ैर, दूध जरूर लाना।

— — — —

आप तो, महाशयजी! तंग बहुत करते हैं। मै कहता हूँ साढ़े तीन आने से धेला भी ज्यादा मंजूर नही। देखिये, पास ही एक रोटी की दूकान है, वहाँ चले जाइये और यह लीजिये साढे तीन आने पैसे? बस, अब मै जाता हूँ।

— — — —

अरे भाई, सुनो तो—सुनो तो, यह क्या करते हो, इतने से कैसे काम चलेगा? सुनो-सुनो। अरे ओ भाई! ओ महाशय, सुनो। अरे ओ महाशय! भाई! ओ—

— — — —

नमस्ते, मन्त्रीजी! उफ! आज तो बड़ी गरमी रही, घोर ऊष्मा पड़ती है। स्वाध्याय भी ठीक-ठीक नहीं होता। कहिए, आपके चिरजीव किस पाठशाला मे पढ़ते है।

— — — —

हाँ-हाँ, उपदेशक जी! कहिए-कहिए-मतलब की बात कहिए, मुझे अवकाश बहुत थोड़ा है। आप चपरासी से कह देना, कल नोटिस निकाल देगा, आपका व्याख्यान हो जायगा।

— — — —

ठहरेंगे कहाँ मेरे सिर पर ? अब मैं चन्दा वसूल करने जाऊँ या आपको ठहराने का प्रबन्ध करूँ ? अच्छा, बताइये आप कहाँ से आये ? कैसे आये ? कब आये ? कितने दिन के लिये आये ? कहाँ जायँगे ? किस गाड़ी से जायँगे ?—और, हाँ—प्रमाणपत्र ?

— — — —

महाशयजी, हम सभा के उपदेशक हैं। दो दिन ठहरेंगे, प्रचार करने आये हैं, यहाँ से कानपुर जायँगे। देखिये, यह आपके लिये मन्त्रीजी की चिट्ठी है।

— — — —

अच्छी बात है, मेरी उस कोठरी मे ठहर जाइये, तख्त पर कपड़े बिछा लीजिये, देखना, मेरी चारपाई का बिस्तर इधर-उधर न हो, आटे-दाल की मटकी और मसाले की डिबिया न लुढक-पुढ़क हो जाय। जूते बाहर ही उतार देना, क्योंकि वह मेरी रोटी बनाने की जगह है।

— — — —

हाँ—हाँ जी, सो क्या हम कोई मूर्ख हैं, आख़िर तो उपदेशक ठहरे, ऐसी असावधानी क्यों करने लगे। हाँ, महाशय ! तो आपका शुभ नाम ? आप कितने दिन से इस समाज-मन्दिर में हैं ?

— — — —

आपको मेरे नाम-धाम से क्या ? बोलिये भोजन की बात ? मुझे देर होती है, जल्द बतलाइये, चन्दा माँगने जाना है।

— — — —

बात क्या ? भोजन करेंगे, भला यहाँ क्या चीज़ अच्छी बनती है ? मिठाइयाँ कौन कौन सी उत्तम मिलती हैं ? देखो भाई, डेढ़ पाव पूड़ियाँ, आध पाव कलाकन्द, छटाँक भर रबड़ी, आधी छटाँक नुकती और बस तीन पाव दूध लेते आना। जब तक मैं सन्ध्या करता हूँ।

— —

पूर्वक समझाये गये हैं। मूल्य केवल नौ आने। यह भारतवासी मात्र के लिए उपयोगी है।

— — — —

अच्छा, तो कहने का अभिप्राय यह है कि लोग ब्रह्मचर्य व्रत धारण करें और अपने शरीरो को बलिष्ठ बनावें। इसी में देश का उपकार है, और यही धर्म का सार है। अपनी कुछ किताबें मै साथ लेता आया हूँ। एक साथ सैट ख़रीदने पर २५ फीसदी कमीशन भी मिलता है।

— — — —

बस, बिना ब्रह्मचर्य के सब व्यर्थ है, अन्त मे मुझे आपसे यही कहना है कि ब्रह्मचर्य धारण करो, ब्रह्मचर्य-सम्बन्धी साहित्य पढ़ो। जिल्द बँधी हुई भी किताब मेरे ट्रंक में पडी हैं। निःसन्देह ब्रह्मचर्य ही जगत् में सार वस्तु है। अब मैं अपना व्याख्यान समाप्त करता हूँ। आशा है, आप पुस्तकों की एक आध प्रति लेकर जायँगे।

———

मन्त्रीजी, सभा के लिए सहायता ? आप जानते ही है, आज-कल वेदप्रचार की आर्थिक अवस्था बहुत ख़राब है।

— — — —

चन्दा-चन्दा इस वक्त कुछ नही हो सकता, शहर की दशा बहुत ख़राब है। अच्छा ! नमस्ते। मुझे और कितने ही कार्य करने है। आपके भोजन का प्रबन्ध तो हो गया न ?

जी हॉ, हो तो गया, मगर·· ·· · ·· ·

— — — —

अच्छी बात है, अब आराम कीजिए, सम्भव हुआ तो कल शाम को व्याख्यान मे मिलूँगा। नमस्ते।

— — — —

महाशयो, ब्रह्मचर्य बड़ी उत्तम वस्तु है, इसे जो धारण नहीं करते, बुरा करते हैं। देखिये, इसके गुण मेरी बनाई इस 'ब्रह्मचर्य-महिमा' मे भली-भॉति वर्णित हैं। मूल्य केवल पॉच आने है।

— — — —

तो, सज्जनो, मै आपको ब्रह्मचर्य की महिमा बता रहा था। ब्रह्मचर्य के अभाव में शरीर अशक्त और निर्बल हो जाता है, और कार्य करने की सामर्थ्य नही रहती। बलवान् बनने के उपाय मेरी इस 'शक्तिसुधा' नामक पोथी मे आपको मिलेगे। मूल्य केवल सात आने। यह तो सैकड़ो की तादाद मे ख़रीद कर मुफ्त बॉटने लायक़ है।

— — — —

हॉ, तो भद्रपुरुषो, निर्बलता से बढ़ कर संसार मे कोई पाप नही है, निर्बलता सारे अनर्थों की जननी है। निर्बलो का न लोक सधता है न परलोक। स्वराज्य तो मिलता ही नहीं। स्वराज्य-प्राप्ति के उपाय मेरी 'आज़ादी' नामक पुस्तक मे बड़ी सुन्दरता

यह तो सब ठीक, मित्र ! पर पेट के लिये भी तो कुछ करना चाहिये, इस नारकीय जीवन से तो मौत ही अच्छी है। न तन को वस्त्र हैं, न पेट को टुकड़े ! धिक्कार है ऐसी जिन्दगी को और लानत है इस पढाई पर ! हाय ! हमारी यह हालत ! यह······

— — — —

अरे, यार, तुम बडी कच्ची गोली के मालूम पड़ते हो, इतने घबरा गये ! ऐसे झींकने लगे !! आओ, बैठो, कुछ विचार करें और इस दारिद्र-दानव को दूर करने के उपाय सोचें।

— — — —

देखो, तुम तो घबराते हो, पर हमारी समझ मे एक बात आती है। आज कल सब से सरल उपाय वैद्य बनना है। कहीं से 'आयुर्वेद-विशारद' या 'वैद्य-कुल-कमल-दिवाकर' की उपाधि खरीद लें और इलाज करना शुरू कर दें। धन की ढेरी लग जायगी ! सुयश का स्तूप खडा हो जायगा !! प्रतिष्ठा के पजावे दिखाई देने लगेंगे !!! क्यो है न ठीक ?

— — — —

भाई, बात तो ठीक है, परन्तु हम लोग तो वैद्यक मे कुछ जानते ही नहीं, चिकित्सा की एक पोथी भी नहीं पढ़ी। दवा कहाँ है ? फिर कैसे हकीम !

— — — —

वाह ! पोथी पढ़ते तो फिर हकीम ही क्यो बनते ? हिकमत भी कोई ऐसी चीज़ है, जिसके लिये 'वर्नाक्यूलर फाइनल परीक्षा' की तरह सिर तोड कर कोशिश की जाय। 'अमृतसागर' या 'इलाज़-उल-ग़ुरबा' पढ़ लिया और बस !

— — — —

बेढब बैद्य

उफ ! बड़ी बेरोजगारी है, लोग मारे-मारे फिरते हैं। भूखो मर रहे है, ऐसी मुसीबत परमात्मा किसी पर न डाले। भला कुछ इस निकम्मेपन का भी ठिकाना है।

— — — —

अरे साहब, हम कौन की कहे, सारे प्रयत्न कर लिये, तमाम कोशिशे करली, पर किसी मे कुछ भी कामयाबी न हुई, घर मे हाथ पर हाथ धरे बैठे है। करें भी तो क्या करें और जायँ भी तो कहाँ जायँ।

— — — —

हाँ हाँ, ठीक कहते हो, भाई ! तुम्हे भी हम बराबर बेरोजगार देख रहे हैं। मै समझता हूँ, जब से मिडिल फेल होकर तुमने मदरसा छोड़ा तब से कोई रोजगार नहीं मिला।

— — — —

रोजगार कैसा, दोस्त ! किसी ने बात भी नहीं पूछी। जहाँ गया वही 'सनद' तलब की गयी !!! मगर 'सनद' कम्बख्त मेरे पास कहाँ ? 'सनद' !!!—हाय ! 'सनद' ही होती तो 'फिदवी' मारा-मारा क्यो फिरता ? इस बुरी हालत मे क्यो मुबतिला होता।

— — — —

अरे भाई, 'सनद' मे भी क्या रक्खा है। यह देखो, मिडिल का सार्टीफिकट ! और चौथी दफा की सनद !! आज तक कहीं जगह नही मिली, किसी ने बात तक करना पसन्द नहीं किया, अब बोलो 'सनद' को ले कर शहद के साथ चाटें या उसे ओढ़ें।

— — — —

नही। 'फीस' भी न सही तो औषध की क़ीमत तो हाथ में आही जायगी। और क्या चाहिए।

— — — —

भाई भोलेश्वर! तुम समझे नही, यह कार्य तो अपने लाभ के लिए किया जायगा, न कि मरीजो के फायदे को। कोई मरे या जीवे हमें अपने टकों से काम! मरेगा उसके घरके रोवेंगे, अच्छा हो जायगा हमारे गुण गावेगा। 'अर्थी दोषम् न पश्यति' इस नीति-वचन को सदैव दृष्टि-पथ में रक्खो। समझे!

— — — —

'अच्छा, लागत से दवा के दाम दूने रखने चाहिये।'—'तो बस करली वैद्यक और बन गये मालामाल? बेवकूफ़! दूनी कि दसगुनी! तुम्हे मालूम नहीं है, दवा की जितनी क़ीमत ज्यादा होती है, उसकी उतनी ही वक़अत बढ़ती है।'

+ + + +

भाई, इतने ज्यादा दाम रक्खे गये तो, गरीब क्या पत्थरों से सिर टकरावेंगे, वे किसके घर जायँगे और कैसे इलाज करायँगे? इस पर भी तो विचार करलो।

+ + + +

भाई, कह तो दिया उनसे कुछ कम ले लेना, 'जैसा मुँस वैसा तमाचा'। मतलब यह है कि, किसी को अपने पंजे से निकलने न देंगे। जिस तरह मुमकिन हो फाँस लो, फन्दे में से, चिड़िया को फड़फड़ाने पर भी, न निकलने दो।

+ + + +

है तो बात सलाह की। मगर हर एक रोग की अलग-अलग दवायें रखनी पड़ेंगी, तब कहीं कामयाबी होगी। शुरू में झंझट जरूर है, और खर्च भी काफी है।

+ + + +

बस ! इतने ही में ?—दो ही किताबे काफी होगी ? दो पुस्तकें पढ़कर ही वैद्य बन जावेगे ? यह तो बड़ा सस्ता सौदा है ! अच्छा, फिर दवाएँ कहाँ से आएँगीं ?

— — — —

हो यार, तुम भी निरे बजरबट्टू ! जभी तो तुम्हे बराबर तीन साल फेल होने पर भी 'वर्नाक्यूलर फाइनल परीक्षा' की सनद नहीं मिली। अरे, दो नहीं एक किताब ही काफी है। सो भी पढ़ते जाओ और इलाज करते जाओ।

— — — —

रही दवाएँ सो क्या उनके लिए चार-छै आने खर्च नहीं कर सकते ? जहाँ दस आने 'अमृतसागर' खरीदने मे व्यय किए जायँगे वहाँ धेली-बारह आने का काठ कवाड़ भी सही।

— — — —

हाँ, एक काम अवश्य करेंगे। दवाओ मे सड़ी से सड़ी और गली से गली चीजें डालेंगे। पंसारियों के यहाँ कूड़ा-करकट बहुत पड़ा रहता है। वही से सस्तमोला खरीद लिया और काम चलाया। क्यो ? है न ठीक ! अच्छी दवाएँ तो मँहगी मिलेगी इसलिए मारो उन्हे गोली।

— — — —

हाँ, है तो दोस्त ठीक, इस काम को कल से ही शुरू करदो। इस से सस्ता सौदा दूसरा न मिलेगा। वाह ! वाह !! तुमने खूब बात सोची !—मगर यह तो बताओ, रोगियो को फायदा न हुआ तब ?

— — — —

तब क्या ? उसके घर वाले रोवेंगे और आँसुओ से पग धोवेंगे। अपनी फीस और दवा के दाम मे तो कोई सन्देह ही

भाई, वाह ! यह भी तुमने अच्छी विधि बताई ! खूब दाम बचाये और शास्त्र का प्रमाण भी दे दिया; तुम बड़े बुद्धिमान् विद्वान् हो ! अगर यही बात न होती, तो सच है, 'वरनाक्यूलर फ़ायनल परीक्षा' के थर्ड डिवीज़न मे पास तुम्हे कौन कर देता ? 'सनद' कैसे मिल जाती ? यार, यह सब तुम नही कर रहे तुम्हारी 'सनद' करा रही है। वह है ही ऐसी चीज़ ! वह मिलती ही तुम जैसे बुद्धिमानों को है।

\+ \+ \+ \+

अच्छा, कल नरक नवमी है, कल से वैद्यक का काम प्रारम्भ होगा। सब विधि समझ मे आगई न ? देखो, बौड़मपन मे आकर भूल न जाना। बस, ऐसा काम करो, न मरज़ रहे न मरीज़। रहे तो हमारी दवा की क़ीमत और जाने आने की फीस। लो, अब जाते है और किसी मूँज़ी मरीज को तलाश करेगे।

यही बेवकूफी की बातें ! अरे कौन पूछता है ? दो चार द्रव्यादि बना कर रखलो, बस अदलते-बदलते उन्हे ही हर मरीज़ को देते रहना। न मालूम तुमने वैद्यक को क्या 'हौआ' समझ रखा है ? जब हमने कह दिया कि वह सबसे सरल काम है, फिर काहे का सोच-विचार।

'मरे को मर जाने दो। घी की चुपड़ी खाने दो ॥'

\+ + + +

अच्छी बात है, दो उपाधियाँ तुम खरीदो और दो मेरे लिये मँगादो। यह लो तीन रुपये तेरह आने। क्या, इतने मे वैद्य-विशारद' और 'आयुर्वेद-पुंगव' की उपाधियाँ आजायँगी न ?

\+ + + +

हाँ ! हाँ, अवश्य ! इसमे तो मनीआर्डर खर्च और वी० पी० का महसूल भी शामिल है। मैं भी दो डिगरियाँ मँगा लूँगा। पुस्तक किसी से मँगैनू माँग लायँगे उसके लिए अभी से दाम डालने की क्या जरूरत है।

\+ + + +

नही, भाई ! ऐसी भी क्या कृपणता, दस-बारह आने की तो बात ही है। अपनी पुस्तक ही खरीद लो, न जाने मँगनई वाला पुस्तक कब माँग बैठे।

\+ + + +

'ही–ही–ही' तुम बड़े सीधे-साधे बौड़म वैद्य बनोगे। अरे, आई हुई चीज़ भी कभी वापिस की जाती है ? माँगता रहो, हजार बार, माँगता रहो। पर देगा कौन ?—शास्त्र में स्पष्ट आज्ञा है—"लेखनी पुस्तिका नारी परहस्ते गता गता।" बस पुस्तक गई सो गई। फिर किसका देना, किसका लेना ? बोलो आई अक्ल मे।

\+ + + +